

**BRAHMAVART P.G. COLLEGE, MANDHANA
KANPUR NAGAR**

प्रश्नBANK

**FOR KANPUR UNIVERSITY'S
ODD SEMESTER EXAMINATION**

M.A.I SEM (Hindi)

Paper-IST

हिंदी काव्य का इतिहास

(A010701T)

50+SHORT ANSWER QUESTIONS

Brief and Intensive Notes

Dr. Amit Kumar Dubey

**Department of Hindi, Brahmavart P.G. College,
Kanpur**

&

Prakhar Shukla

Research Scholar U.G.C. NET & J.R.F.

एम.ए. प्रथम सेमेस्टर
वषय- हिन्दी
प्रथम प्रश्नपत्र
हिन्दी काव्य का इतिहास (A010701T)

प्रश्न 1: साहित्य के इतिहास और आलोचना के बीच क्या संबंध है? स्पष्ट कीजिए।

साहित्य का इतिहास और आलोचना, साहित्य के अध्ययन के दो अलग-अलग अंग होते हुए भी एक-दूसरे से बहुत गहराई से जुड़े हुए हैं। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और इन्हें एक-दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इनके बीच के संबंध को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है:

- **परस्पर पूरक संबंध:** साहित्य का इतिहास हमें यह जानकारी देता है कि कोई रचना कब रची गई, किस काल में लिखी गई और उसका रचनाकार कौन है। वहीं दूसरी ओर, आलोचना हमें उस रचना के भीतर मौजूद गुण-दोष, उसकी भाषा-शैली और उसके वास्तविक महत्व के बारे में बताती है।
- **इतिहास-लेखन में आलोचना की भूमिका:** साहित्य के इतिहास में किस कवि या लेखक को कितना महत्वपूर्ण स्थान दिया जाएगा, इसका निर्णय 'आलोचनात्मक दृष्टि' ही करती है। बिना एक अच्छी आलोचनात्मक समझ के, साहित्य का इतिहास केवल लेखकों, जन्म-तिथियों और किताबों की एक उबाऊ सूची मात्र बनकर रह जाएगा।
- **आलोचना के लिए इतिहास का ज्ञान जरूरी:** कोई भी आलोचक किसी रचना की सही और निष्पक्ष आलोचना तब तक नहीं कर सकता, जब तक उसे उस समय की ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों की जानकारी न हो। इतिहास ही आलोचक को वह पृष्ठभूमि देता है जिस पर वह किसी रचना को परखता है।
- **रचनाओं की वर्तमान प्रासंगिकता तय करना:** साहित्य का इतिहास अतीत (बीते हुए समय) की रचनाओं को सुरक्षित रखता है, जबकि आलोचना उन पुरानी रचनाओं को आज के समय (वर्तमान) की कसौटी पर कसती है और बताती है कि वे हमारे लिए आज भी कितनी उपयोगी और प्रासंगिक हैं।
- **साहित्यिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण:** इतिहास हमें साहित्य के विकास का क्रम (जैसे आदिकाल से भक्तिकाल में जाना) बताता है, लेकिन इन कालों की प्रवृत्तियों और विचारधाराओं का गहराई से विश्लेषण आलोचना के माध्यम से ही किया जाता है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो साहित्य का इतिहास तथ्यों और सूचनाओं का 'शरीर' है, जबकि आलोचना उसकी देखने वाली 'आत्मा' है। दोनों के मेल से ही साहित्य का पूर्ण अध्ययन संभव है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' इसका सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ इतिहास और आलोचना एक साथ चलते हैं।

प्रश्न 2: साहित्य के इतिहास में अनुसंधान (शोध) का क्या महत्व है?

साहित्य के इतिहास में 'अनुसंधान' (शोध या Research) का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। अनुसंधान के बिना साहित्य का इतिहास कभी भी प्रामाणिक, सत्य और पूर्ण नहीं हो सकता। साहित्य के इतिहास में अनुसंधान के महत्व को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है:

- **नए तथ्यों और ग्रंथों की खोज:** अनुसंधान का सबसे बड़ा काम नई और अज्ञात जानकारी को समाज के सामने लाना है। निरंतर शोध के माध्यम से ही पुराने पुस्तकालयों, मठों या व्यक्तिगत संग्रहों से ऐसी कई पुरानी पांडुलिपियाँ (Manuscripts) और ग्रंथ मिलते हैं, जिनके बारे में दुनिया पहले कुछ नहीं जानती थी।
- **रचनाओं की प्रामाणिकता तय करना:** पुरानी रचनाओं में समय के साथ लोगों द्वारा कई मिलावटें (प्रक्षिप्त अंश) कर दी जाती हैं। वैज्ञानिक शोध के द्वारा ही यह तय किया जाता है कि किसी पुरानी रचना का कौन-सा हिस्सा असली है और कौन-सा बाद में जोड़ा गया है (जैसे- 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता का विवाद)।
- **पुरानी गलतियों और भ्रांतियों को सुधारना:** कई बार पहले के इतिहासकारों से तिथियों या लेखकों के विवरण में कुछ गलतियाँ छूट जाती हैं। नवीन अनुसंधान इन पुरानी गलतियों, भ्रांतियों और अधूरी जानकारीयों को वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर सुधारता है।
- **सही कालक्रम और तिथियों का निर्धारण:** इतिहास में कवियों के जन्म, उनकी मृत्यु और रचनाओं के लिखे जाने का सटीक समय तय करना बहुत मुश्किल होता है। शोध ऐतिहासिक साक्ष्यों (जैसे- शिलालेख, सिक्के, समकालीन ग्रंथ) के आधार पर सही तिथियों का निर्धारण करने में मदद करता है।
- **अज्ञात रचनाकारों को प्रकाश में लाना:** इतिहास के पन्नों में कई बार ऐसे प्रतिभावान कवि और लेखक हाशिए पर छूट जाते हैं जिन्हें उनकी उचित पहचान नहीं मिल पाती। अनुसंधान ऐसे भूले-बिसरे रचनाकारों को ढूँढकर उन्हें साहित्य के इतिहास में उनका सही स्थान दिलाता है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो अनुसंधान साहित्य के इतिहास को 'ठहरी हुई' या बासी चीज़ नहीं रहने देता। यह लगातार चलने वाली एक प्रक्रिया है जो साहित्य के इतिहास को हमेशा नयापन, प्रामाणिकता और सत्यता प्रदान करती है। शोध के बिना इतिहास केवल एक अधूरी कहानी बनकर रह जाएगा।

प्रश्न 3: साहित्येतिहास-दर्शन के समकालीन सिद्धांतों का सरल शब्दों में परिचय दीजिए।

साहित्येतिहास-दर्शन का अर्थ है—साहित्य के इतिहास को देखने, परखने और समझने का नज़रिया (दृष्टिकोण)। आधुनिक समय में साहित्य के इतिहास का मूल्यांकन करने के लिए कई नए सिद्धांत विकसित हुए हैं। इन समकालीन सिद्धांतों को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से सरलता से समझा जा सकता है:

- **समाजशास्त्रीय सिद्धांत:** यह सिद्धांत मानता है कि साहित्य और समाज का संबंध अटूट है। कोई भी रचनाकार शून्य में नहीं लिखता; वह अपने समाज की मान्यताओं, रीति-रिवाजों और व्यवस्थाओं से प्रभावित होता है। यह सिद्धांत इस बात की जाँच करता है कि साहित्य में तत्कालीन समाज का कितना सच्चा चित्रण हुआ है।
- **मार्क्सवादी (प्रगतिवादी) सिद्धांत:** यह सिद्धांत कार्ल मार्क्स के विचारों पर आधारित है। यह साहित्य को समाज की 'आर्थिक परिस्थितियों' और 'वर्ग-संघर्ष' (अमीर-गरीब की लड़ाई) की उपज मानता है। यह देखता है कि कोई रचना शोषितों (आम जनता/मजदूरों) के पक्ष में खड़ी है या सत्ता के पक्ष में।
- **मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत:** सिगमंड फ्रायड के विचारों पर आधारित यह सिद्धांत साहित्य को बाहरी दुनिया से ज्यादा लेखक और पात्रों के 'मन' की उपज मानता है। यह सिद्धांत रचना में छिपी हुई मानसिक उथल-पुथल, कुंठाओं और मनुष्य की दबी हुई इच्छाओं (Subconscious mind) का अध्ययन करता है।

- **रूपवादी (संरचनावादी) सिद्धांत:** यह सिद्धांत समाज या लेखक की विचारधारा को किनारे रखकर केवल 'रचना के शिल्प' (Form) पर ध्यान देता है। इसके अनुसार, कविता या कहानी में प्रयुक्त भाषा, शब्द-चयन, अलंकार और व्याकरण ही सबसे महत्वपूर्ण हैं।
- **विमर्शमूलक सिद्धांत (स्त्री और दलित विमर्श):** यह आज का सबसे नया और प्रासंगिक सिद्धांत है। यह मानता है कि पुराने इतिहास में महिलाओं, दलितों और हाशिए पर खड़े लोगों को उचित स्थान नहीं मिला। यह साहित्य को समानता, सामाजिक न्याय और मानवीय अधिकारों की कसौटी पर परखता है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो समकालीन साहित्येतिहास-दर्शन यह मानता है कि किसी भी साहित्य को समझने का कोई एक निश्चित फॉर्मूला नहीं है। साहित्य को पूरी तरह समझने के लिए हमें समाज, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र और शिल्प—इन सभी सिद्धांतों का मिला-जुला उपयोग करना पड़ता है।

प्रश्न 4: साहित्य के इतिहास में 'मध्ययुगीनता' की अवधारणा से आप क्या समझते हैं?

साहित्य और इतिहास के संदर्भ में 'मध्ययुगीनता' (Medievalism) केवल किन्हीं दो कालों (प्राचीन और आधुनिक काल) के बीच के समय का नाम नहीं है। यह मूल रूप से एक विशेष प्रकार की 'सोच', जीवन-दृष्टि और सांस्कृतिक मानसिकता का नाम है। हिंदी साहित्य (विशेषकर भक्तिकाल और रीतिकाल) के संदर्भ में 'मध्ययुगीनता' की अवधारणा को निम्नलिखित बिंदुओं से सरलता से समझा जा सकता है:

- **धर्म और ईश्वर की प्रधानता:** मध्ययुगीन सोच की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें मनुष्य के जीवन और साहित्य के केंद्र में 'मनुष्य' न होकर 'ईश्वर' या 'धर्म' होता है। इस काल में इस संसार (लौकिक जीवन) की तुलना में मृत्यु के बाद के जीवन (स्वर्ग-नरक, मोक्ष) को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता था।
- **सामंती व्यवस्था और दरबारी संस्कृति:** मध्ययुगीन समाज राजाओं और सामंतों की व्यवस्था पर टिका था। रीतिकाल का अधिकांश साहित्य इसी 'सामंती मानसिकता' का परिणाम है, जहाँ कवियों का मुख्य काम आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा (चाटुकारिता) करना और उनका मनोरंजन करना होता था।
- **परंपरा और रूढ़ियों का आँख मूँदकर पालन:** इस युग में नई वैज्ञानिक सोच या तर्क की जगह पुरानी परंपराओं, मान्यताओं और रूढ़ियों को आँख मूँदकर स्वीकार किया जाता था। पुरानी बातों को ही अंतिम सत्य मान लिया जाता था।
- **चमत्कार और रहस्यवाद पर विश्वास:** मध्ययुगीनता में तर्क (Logic) की जगह आस्था, रहस्य और चमत्कारों का बोलबाला था। ईश्वर के अवतारों, सिद्धों या सूफी संतों के चमत्कारों पर सहज ही विश्वास कर लिया जाता था।
- **स्वतंत्र 'व्यक्तिवाद' का अभाव:** आधुनिक काल में जहाँ हर 'इंसान' की अपनी स्वतंत्र पहचान महत्वपूर्ण हो गई, वहीं मध्ययुगीनता में व्यक्ति की अपनी कोई अलग पहचान नहीं थी। व्यक्ति को केवल उसके धर्म, जाति या उसके सामंत (मालिक) के संदर्भ में ही देखा जाता था।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो 'मध्ययुगीनता' एक ऐसी विचारधारा थी जो पूरी तरह से धर्म-केंद्रित, सामंती, तर्कहीन और परंपरावादी थी। जब साहित्य और समाज ने इस मध्ययुगीन सोच की जकड़न को तोड़ा, तभी साहित्य में 'पुनर्जागरण' और 'आधुनिकता' का उदय हुआ।

प्रश्न 5: हिंदी साहित्य में 'पुनर्जागरण' का क्या अर्थ है? इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।

'पुनर्जागरण' (Renaissance) का शाब्दिक अर्थ है—'फिर से जागना' या 'नई चेतना का आना'। हिंदी साहित्य के इतिहास में, विशेषकर 19वीं शताब्दी (भारतेन्दु युग) में, जब भारतीय समाज लंबे समय की गुलामी, रूढ़ियों और अज्ञानता की नींद से जागकर एक नए प्रकाश की ओर बढ़ा, तो उस काल को 'पुनर्जागरण' कहा गया।

इसके अर्थ और साहित्य में इसके महत्व को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- **अतीत का गौरव और वर्तमान का यथार्थ:** पुनर्जागरण का मतलब केवल पुराने समय (स्वर्णिम अतीत) की महानता का गुणगान करना नहीं था। इसका असली उद्देश्य उस गौरवशाली अतीत से प्रेरणा लेकर अपने 'वर्तमान' की कमियों, गरीबी और दुर्दशा को पहचानना और उसे सुधारना था।
- **तर्क और वैज्ञानिक सोच का विकास:** इस काल में साहित्यकारों और समाज सुधारकों ने पुरानी मान्यताओं और अंधविश्वासों को आँख मूँदकर मानना बंद कर दिया। छुआछूत, बाल-विवाह और सती प्रथा जैसी बुराइयों को तर्क और मानवता की कसौटी पर परखा जाने लगा।
- **मनुष्य की प्रधानता (Humanism):** मध्यकाल (भक्तिकाल और रीतिकाल) में जहाँ साहित्य के केंद्र में केवल 'ईश्वर' या 'राजा' होते थे, वहीं पुनर्जागरण ने 'साधारण मनुष्य' को साहित्य के केंद्र में ला खड़ा किया। अब आम आदमी की भुखमरी, शिक्षा और उसके अधिकार साहित्य का विषय बन गए।
- **राष्ट्रीय चेतना का उदय:** देशवासियों में पहली बार यह भावना गहराई से जागी कि वे सब एक 'राष्ट्र' का हिस्सा हैं। अंग्रेजों की आर्थिक लूट और परतंत्रता (गुलामी) के खिलाफ आवाज़ उठाने का साहस इसी युग के साहित्य ने दिया।
- **खड़ीबोली और गद्य का विकास:** अपने नए विचारों को आम जनता तक पहुँचाने के लिए लेखकों ने पुरानी ब्रजभाषा की जगह आसान 'खड़ीबोली' को अपनाया। साथ ही, निबंध, नाटक, और उपन्यास जैसी नई गद्य विधाओं का जन्म इसी पुनर्जागरण का परिणाम था।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो हिंदी साहित्य में पुनर्जागरण केवल कोई राजनीतिक घटना नहीं थी, बल्कि यह एक गहरी 'सांस्कृतिक और वैचारिक क्रांति' थी। इसने भारतीय समाज को मध्ययुगीन अंधकार से निकालकर आधुनिकता की मजबूत नींव पर खड़ा करने का ऐतिहासिक कार्य किया।

प्रश्न 6: 'आधुनिकता' क्या है? साहित्य के इतिहास में इसकी प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

'आधुनिकता' (Modernity) केवल 'आज के समय' में जीने या नए कपड़े पहनने का नाम नहीं है, बल्कि यह एक नई, वैज्ञानिक और स्वतंत्र 'सोच' (Mindset) का नाम है। जब मनुष्य पुरानी और रूढ़िवादी मान्यताओं को छोड़कर हर चीज़ को तर्क, विज्ञान और यथार्थ (सच्चाई) के चश्मे से देखने लगता है, तो उस दृष्टिकोण को आधुनिकता कहते हैं।

हिंदी साहित्य के इतिहास में 'आधुनिकता' की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- **तर्क और वैज्ञानिक दृष्टिकोण:** आधुनिक साहित्य में अंधविश्वासों, भाग्य और चमत्कारों पर भरोसा नहीं किया जाता। यहाँ हर पुरानी मान्यता और परंपरा को 'तर्क' (Logic) की कसौटी पर परखा जाता है और जो गलत होता है, उसका विरोध किया जाता है।

- **मानववाद (Humanism) की प्रतिष्ठा:** आधुनिक साहित्य के केंद्र में ईश्वर, अवतार या राजा-महाराजा नहीं हैं। यहाँ 'साधारण इंसान', उसकी भूख, उसकी गरीबी, उसकी शिक्षा और उसके अधिकारों को सबसे अधिक महत्व दिया गया है।
- **यथार्थवाद (Realism) पर जोर:** आधुनिक साहित्य कोरी कल्पनाओं, परियों की कहानियों या झूठे आदर्शों में नहीं जीता। यह समाज की कड़वी सच्चाइयों, शोषितों की पीड़ा और जीवन के वास्तविक संघर्षों का सच्चा (यथार्थ) चित्रण करता है।
- **व्यक्तिवाद और निजता (Individualism):** आधुनिकता मानती है कि हर इंसान की अपनी एक स्वतंत्र पहचान और स्वतंत्रता है। इसलिए आधुनिक साहित्य में इंसान के अकेलेपन, उसके मानसिक द्वंद्व और उसके निजी सुख-दुख को गहराई से उकेरा गया है।
- **विद्रोही चेतना:** आधुनिक साहित्य शांत या संतुष्ट नहीं है; यह बेचैन है। इसमें समाज की गलत व्यवस्थाओं, जाति-पाँति, छुआछूत और पूंजीवादी शोषण के खिलाफ खुलकर आवाज़ (विद्रोह) उठाई गई है।
- **गद्य और खड़ीबोली का विकास:** आधुनिक सोच को व्यक्त करने के लिए पुरानी ब्रजभाषा की जगह आम बोलचाल की 'खड़ीबोली' को अपनाया गया। इसी आधुनिकता के कारण उपन्यास, कहानी, नाटक और निबंध जैसी गद्य विधाओं का जन्म हुआ।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो आधुनिकता एक ऐसी चेतना है जिसने साहित्य को राजदरबारों और आसमान की कल्पनाओं से उतारकर, आम आदमी की झोपड़ी और सड़कों के कठोर यथार्थ से जोड़ दिया।

प्रश्न 7: हिंदी साहित्य के काल-विभाजन में आने वाली प्रमुख समस्याएँ कौन-सी हैं?

हिंदी साहित्य के लंबे और विशाल इतिहास को अलग-अलग युगों या कालों में बाँटना (काल-विभाजन) एक बहुत ही कठिन कार्य है। इतिहास को विभिन्न खंडों में बाँटते समय इतिहासकारों और आलोचकों को कई गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिन्हें निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- **प्रवृत्तियों का आपस में मिलना (Overlapping):** कोई भी साहित्यिक प्रवृत्ति या युग किसी एक निश्चित तारीख को शुरू या खत्म नहीं होता। जब एक युग समाप्त हो रहा होता है, तब अगले युग की विशेषताएँ पहले ही जन्म ले चुकी होती हैं। ऐसे में दो कालों के बीच कोई स्पष्ट 'लक्ष्मण रेखा' खींचना बहुत मुश्किल होता है।
- **एक ही समय में कई प्रवृत्तियों का होना:** किसी भी काल में केवल एक ही तरह का साहित्य नहीं लिखा जाता। उदाहरण के लिए, जब भक्तिकाल में भक्ति की कविताएँ चरम पर थीं, तब भी राजाओं के दरबार में वीरगाथा और शृंगारिक कविताएँ लिखी जा रही थीं। ऐसे में उस पूरे समय को एक ही नाम में कैसे बांधा जाए, यह एक बड़ी समस्या है।
- **विभाजन का आधार क्या हो?:** इतिहास को किस आधार पर बाँटा जाए? कभी इसे प्रवृत्तियों के आधार पर बाँटा जाता है (जैसे- भक्तिकाल, रीतिकाल), तो कभी किसी महान साहित्यकार के नाम पर (जैसे- भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग)। अलग-अलग आधार अपनाने से काल-विभाजन में एकरूपता (Uniformity) नहीं रहती।
- **प्रारंभ और अंत की तिथि का विवाद:** हिंदी साहित्य की शुरुआत असल में कब से मानी जाए, इसे लेकर विद्वानों में भारी मतभेद है। कुछ विद्वान इसे 7वीं सदी (सिद्धों और नाथों के समय) से मानते हैं, जबकि आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे इतिहासकार इसे 10वीं सदी से मानते हैं।

- **भाषा का संक्रमण काल:** शुरुआत में यह तय करना बहुत कठिन होता है कि कौन-सी रचना शुद्ध हिंदी की है और कौन-सी अपभ्रंश या प्राकृत भाषा की। भाषा के इस संक्रमण के कारण आदिकाल की सीमाएँ तय करना सबसे चुनौतीपूर्ण है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो साहित्य गणित के फॉर्मूले की तरह नहीं चलता। इसलिए काल-विभाजन केवल अध्ययन की सुविधा के लिए बनाया गया एक ढांचा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा किया गया काल-विभाजन आज भी सबसे अधिक वैज्ञानिक और सर्वमान्य माना जाता है, भले ही उसमें कुछ कमियाँ हों।

प्रश्न 8: आदिकाल के नामकरण की समस्या पर विचार करते हुए इसकी पृष्ठभूमि स्पष्ट कीजिए।

हिंदी साहित्य के इतिहास में सबसे पहला काल जिसे 'आदिकाल' कहा जाता है, उसके नामकरण को लेकर विद्वानों में सबसे ज्यादा मतभेद और विवाद रहा है। इसे समझने के लिए हमें उस समय की पृष्ठभूमि और विभिन्न विद्वानों के विचारों को जानना होगा:

आदिकाल की पृष्ठभूमि:

- **राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथल:** यह वह समय था जब देश छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। राजपूत राजा आपस में लड़ रहे थे और बाहरी आक्रमण (मुस्लिम आक्रमण) शुरू हो गए थे।
- **साहित्य में विविधता:** इस समय के साहित्य में कोई एक धारा नहीं थी। एक तरफ राजाओं के दरबार में युद्ध और वीरता की कविताएँ (रासो साहित्य) लिखी जा रही थीं, तो दूसरी तरफ सिद्ध, नाथ और जैन मुनि अपना धार्मिक साहित्य लिख रहे थे। इसके अलावा अमीर खुसरो और विद्यापति लौकिक और शृंगारिक रचनाएँ कर रहे थे। एक ही समय में इतनी अलग-अलग तरह की रचनाओं के कारण इसे कोई एक नाम देना बहुत मुश्किल था।

नामकरण को लेकर विभिन्न मत:

- **वीरगाथा काल:** आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने युद्धों और वीरता की कविताओं की अधिकता देखकर इसे 'वीरगाथा काल' कहा। लेकिन बाद में शोध से पता चला कि कई रासो ग्रंथ प्रामाणिक नहीं हैं और इस नाम से उस समय का 'धार्मिक साहित्य' पूरी तरह छूट जाता है।
- **चारण काल:** ग्रियर्सन और डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे 'चारण काल' कहा क्योंकि उस समय चारण या भाट कवि राजाओं की प्रशंसा में कविताएँ लिखते थे।
- **सिद्ध-सामंत काल:** राहुल सांकृत्यायन ने इसे 'सिद्ध-सामंत काल' कहा, जो समाज के धार्मिक (सिद्ध) और राजनीतिक (सामंत) रूप को दर्शाता है।
- **बीजवपन काल:** महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसे हिंदी साहित्य के बीज बोने का समय (बीजवपन काल) कहा।
- **आदिकाल:** आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'आदिकाल' नाम दिया, जिसका अर्थ है 'शुरुआत'।

निष्कर्ष:

उपर्युक्त सभी नामों में 'आदिकाल' नाम ही सबसे अधिक सही और सर्वमान्य है। यह नाम किसी एक विशेष प्रवृत्ति (जैसे सिर्फ वीरता या धर्म) तक सीमित नहीं है। यह नाम स्पष्ट करता है कि यह हिंदी भाषा, साहित्य और उसकी प्रवृत्तियों के विकास का एकदम शुरुआती और आरंभिक दौर था।

प्रश्न 9: रासोकाव्य परंपरा क्या है? इसकी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता के विवाद को समझाइए।

रासोकाव्य परंपरा का अर्थ:

हिंदी साहित्य के आदिकाल में चारण और भाट कवियों द्वारा अपने आश्रयदाता राजाओं (जिनके दरबार में वे रहते थे) की वीरता, उनके युद्धों और उनके प्रेम-प्रसंगों का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करने के लिए जिस काव्य की रचना की गई, उसे 'रासोकाव्य परंपरा' कहा जाता है। 'पृथ्वीराज रासो', 'परमाल रासो', 'बीसलदेव रासो' और 'खुमाण रासो' इस परंपरा के प्रमुख ग्रंथ हैं।

प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता का विवाद:

रासो ग्रंथों (विशेषकर महाकवि चंदबरदाई द्वारा रचित 'पृथ्वीराज रासो') को लेकर साहित्य के इतिहास में एक बहुत बड़ा विवाद है। विवाद इस बात का है कि क्या ये ग्रंथ सचमुच उसी काल (आदिकाल) में लिखे गए थे या बाद में किसी ने लिखकर पुराने कवियों का नाम दे दिया? विद्वानों के इस विवाद को तीन भागों में बाँटा जा सकता है:

- **1. अप्रामाणिक (जाली) मानने वाले विद्वान:** आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. वूलर और गौरीशंकर हीराचंद ओझा जैसे विद्वान इसे पूरी तरह जाली या बाद की रचना मानते हैं। उनके अनुसार, रासो ग्रंथों में दी गई राजाओं की वंशावली, घटनाएँ और युद्धों की तिथियाँ ऐतिहासिक सच्चाई से बिल्कुल मेल नहीं खातीं। साथ ही, इनमें भाषा का जो रूप मिलता है, वह आदिकाल का न होकर बहुत बाद का है।
- **2. प्रामाणिक (असली) मानने वाले विद्वान:** बाबू श्यामसुंदर दास, मिश्रबंधु और कर्नल टॉड जैसे विद्वान इसे पूरी तरह असली और प्रामाणिक मानते हैं। उनका तर्क है कि तिथियों में जो अंतर दिखाई देता है, वह इसलिए है क्योंकि उस समय कोई अलग कलेंडर (जैसे- आनंद संवत्) चलता था।
- **3. अर्द्ध-प्रामाणिक (आधा सच-आधा झूठ) मानने वाले:** आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और मुनि जिनविजय जैसे विद्वान बीच का रास्ता अपनाते हैं, और आज यही मत सबसे ज्यादा सही माना जाता है। इनका कहना है कि 'पृथ्वीराज रासो' मूल रूप से चंदबरदाई ने ही लिखा था (यह हिस्सा प्रामाणिक है), लेकिन समय के साथ बाद के गायकों और कवियों ने उसमें अपनी तरफ से बहुत सी झूठी घटनाएँ और पंक्तियाँ जोड़ दीं (यह हिस्सा अप्रामाणिक या प्रक्षिप्त है)।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो रासो ग्रंथ इतिहास की किताबें नहीं हैं, बल्कि वे कविता की किताबें हैं। ये पूरी तरह जाली नहीं हैं, लेकिन समय के साथ लोगों द्वारा इनमें बहुत सी मिलावट (प्रक्षिप्त अंश) कर दी गई है, जिससे इनका मूल रूप छिप गया है।

प्रश्न 10: रासोकाव्यों की प्रमुख प्रवृत्तियों (विशेषताओं) का विस्तार से वर्णन कीजिए।

हिंदी साहित्य के आदिकाल में चारण और भाट कवियों द्वारा रचित 'रासो साहित्य' (जैसे- पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो) की अपनी कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ हैं। इन्हें निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है:

- **युद्धों का सजीव और आँखों देखा वर्णन:** रासो ग्रंथों की सबसे बड़ी विशेषता उनके युद्ध वर्णन हैं। चूँकि चारण कवि केवल दरबारी कवि नहीं थे, बल्कि वे स्वयं राजा के साथ युद्धभूमि में जाकर तलवार भी चलाते थे। इसलिए उनके द्वारा किया गया युद्धों का वर्णन अत्यंत असली और सजीव लगता है।
- **वीर और शृंगार रस का अद्भुत मेल:** इन काव्यों में केवल मार-काट (वीर रस) ही नहीं है, बल्कि प्रेम (शृंगार रस) भी भरपूर मात्रा में है। उस समय अधिकतर युद्ध किसी सुंदर राजकुमारी को पाने या उसके स्वयंवर को लेकर ही लड़े जाते थे, इसलिए इन काव्यों में युद्ध और प्रेम एक साथ चलते हैं।

- **आश्रयदाताओं की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा:** इन कवियों का मुख्य काम अपने राजा को खुश रखना था। इसलिए उन्होंने अपने आश्रयदाता राजाओं को किसी देवता या महामानव की तरह दिखाया है और उनकी साधारण बातों को भी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर (अतिशयोक्ति) पेश किया है।
- **ऐतिहासिकता का अभाव (कल्पना की अधिकता):** रासो काव्यों में राजाओं के नाम तो असली हैं, लेकिन उनके साथ जुड़ी घटनाएँ, युद्धों की तिथियाँ और वंशावलियाँ ज्यादातर कवियों की कल्पना की उपज हैं। अतः ये ऐतिहासिक दृष्टि से पूरी तरह प्रामाणिक नहीं हैं।
- **संकुचित राष्ट्रीयता:** उस समय के राजाओं के लिए 'देश' का मतलब केवल उनका अपना छोटा-सा राज्य (जैसे केवल दिल्ली या कन्नौज) होता था। संपूर्ण भारत को एक राष्ट्र मानने की भावना (व्यापक राष्ट्रीयता) का इन काव्यों में पूरी तरह अभाव है।
- **डिंगल और पिंगल भाषा का प्रयोग:** वीर रस के कठोर भावों को व्यक्त करने के लिए राजस्थानी मिश्रित अपभ्रंश ('डिंगल' भाषा) और शृंगार की कोमल बातों के लिए ब्रज मिश्रित अपभ्रंश ('पिंगल' भाषा) का सुंदर प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो रासोकाव्य दरबारी संस्कृति, वीरता और प्रेम-कथाओं का ऐसा मिला-जुला रूप है, जो ऐतिहासिक रूप से भले ही कमजोर हो, लेकिन साहित्यिक दृष्टि से हिंदी साहित्य की एक अमूल्य धरोहर है।

प्रश्न 11: 'पृथ्वीराज रासो' के आधार पर महाकवि चंदबरदाई की काव्य-कला का मूल्यांकन कीजिए।

हिंदी साहित्य के इतिहास में चंदबरदाई को हिंदी का 'प्रथम महाकवि' और उनकी महान रचना 'पृथ्वीराज रासो' को हिंदी का 'प्रथम महाकाव्य' माना जाता है। चंदबरदाई केवल एक दरबारी कवि ही नहीं थे, बल्कि वे महाराजा पृथ्वीराज चौहान के अभिन्न मित्र, सलाहकार और एक वीर सैनिक भी थे। उनकी काव्य-कला (रचना-कौशल) की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- **सजीव और आँखों देखा युद्ध वर्णन:** चूँकि चंदबरदाई स्वयं तलवार लेकर युद्धभूमि में लड़ते थे, इसलिए उन्होंने युद्धों का जो वर्णन किया है, वह कोरी कल्पना नहीं लगता। सेना की सजावट, हाथियों-घोड़ों की दौड़, हथियारों की झंकार और वीरों के उत्साह का उन्होंने अत्यंत सजीव चित्रण किया है।
- **वीर और शृंगार रस का सुंदर समन्वय:** चंदबरदाई की कविता में तलवार की धार (वीर रस) और प्रेम की कोमलता (शृंगार रस) दोनों का अद्भुत मेल है। उन्होंने जहाँ युद्ध के मैदान का रौद्र रूप दिखाया है, वहीं रानियों के रूप-सौंदर्य और प्रेम-प्रसंगों का भी बहुत मार्मिक वर्णन किया है।
- **छंदों पर असाधारण अधिकार (छंदों का राजा):** चंदबरदाई को 'छंदों का राजा' या 'छंदों का सम्राट' कहा जाता है। 'पृथ्वीराज रासो' में 68 प्रकार के छंदों (जैसे- दोहा, कवित्त, तोमर, त्रोटक) का प्रयोग हुआ है। 'छप्पय' उनका सबसे प्रिय छंद था, जिसका प्रयोग उन्होंने वीर रस को जगाने के लिए बड़ी कुशलता से किया है।
- **डिंगल और पिंगल भाषा का प्रयोग:** चंदबरदाई भाषा के पारखी थे। उन्होंने युद्ध और क्रोध के कठोर दृश्यों के लिए राजस्थानी मिश्रित 'डिंगल' भाषा तथा प्रेम और शृंगार के प्रसंगों के लिए कोमल 'पिंगल' (ब्रज मिश्रित) भाषा का एकदम सटीक प्रयोग किया है।
- **प्रकृति चित्रण:** चंदबरदाई ने प्रकृति को पात्रों की भावनाओं के अनुसार ढाला है। युद्ध के समय प्रकृति भयंकर दिखाई देती है, जबकि शृंगार के समय वसंत या चाँदनी रात का वर्णन नायक-नायिका के प्रेम को बढ़ाने (उद्दीपन) का काम करता है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो चंदबरदाई की काव्य-कला अत्यंत उच्च कोटि की है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनकी इसी महानता को देखते हुए उन्हें हिंदी का प्रथम महाकवि स्वीकार किया है। उनकी कविता में इतिहास, कल्पना, वीरता और प्रेम का ऐसा संगम है, जो आदिकाल में अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

प्रश्न 12: आदिकालीन साहित्य में जगनिक और उनके 'परमाल रासो' (आल्हाखंड) का क्या महत्व है?

आदिकालीन साहित्य में महोबा के राजा परमार्दिदेव (परमाल) के दरबारी कवि जगनिक का बहुत ऊँचा स्थान है। उनके द्वारा रचित 'परमाल रासो' (जिसे लोक-भाषा में 'आल्हाखंड' कहा जाता है) हिंदी वीरकाव्य की एक अमर धरोहर है। साहित्य और लोक-संस्कृति में इसके महत्व को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- **वीर रस का अद्वितीय काव्य:** जगनिक ने महोबा के दो प्रसिद्ध वीर सेनापतियों—'आल्हा' और 'ऊदल'—के युद्धों और उनकी वीरता का अत्यंत ओजस्वी (जोश से भरा) वर्णन किया है। इसमें वीर रस का ऐसा प्रवाह है जिसे सुनकर कायरों के भीतर भी वीरता जाग उठती है।
- **दरबार से निकलकर जनता का काव्य (लोक-काव्य):** रासो परंपरा के अन्य ग्रंथ जहाँ केवल राजाओं के महलों या पुस्तकालयों तक सीमित रह गए, वहीं जगनिक का 'आल्हाखंड' महलों की चारदीवारी तोड़कर आम जनता के कंठ (आवाज़) में बस गया। यह हिंदी साहित्य का सबसे लोकप्रिय 'लोक-काव्य' है।
- **मौखिक परंपरा और अद्भुत लोकप्रियता:** यह ग्रंथ लिखित रूप से ज्यादा मौखिक परंपरा (गाने) के रूप में जीवित रहा है। उत्तर भारत (विशेषकर बुंदेलखंड और उत्तर प्रदेश) में आज भी बरसात (सावन) के मौसम में ढोलक की थाप पर लोक-गायक पूरे जोश के साथ 'आल्हा' गाते हैं।
- **ओजस्वी भाषा और 'आल्हा' छंद:** जगनिक ने इसे गाने के लिए एक विशेष छंद का प्रयोग किया, जिसे बाद में 'आल्हा छंद' (वीर छंद) ही कहा जाने लगा। इसकी पंक्तियों में गजब की ऊर्जा है, जैसे—
*"बारह बरस लौ कूकर जीवै, अरु तेरह लौ जियै सियारा।
बरस अठारह छत्री जीवै, आगे जीवन को धिक्कारा॥"*
- **वीरता और आत्मसम्मान का प्रतीक:** जगनिक का यह काव्य केवल राजाओं की झूठी तारीफ नहीं है, बल्कि यह अपने आत्मसम्मान और मातृभूमि की रक्षा के लिए हंसते-हंसते प्राण न्यौछावर कर देने की भावना को दर्शाता है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो जगनिक का 'परमाल रासो' आदिकाल की वह इकलौती रचना है जिसने वीर रस को 'लोक-संस्कृति' का हिस्सा बना दिया। सदियों बाद भी आम जनता के बीच इसकी अपार लोकप्रियता ही जगनिक के साहित्यिक महत्व का सबसे बड़ा प्रमाण है।

प्रश्न 13: आदिकाल की कविता में विद्यापति और अमीर खुसरो के योगदान पर प्रकाश डालिए।

हिंदी साहित्य के आदिकाल में जहाँ एक तरफ युद्धों और वीर रस (रासो साहित्य) का कोलाहल था, वहीं अमीर खुसरो और विद्यापति ने अपनी रचनाओं से साहित्य को युद्ध के मैदान से निकालकर आम जनजीवन, मनोरंजन और प्रेम की कोमलता से जोड़ा। एक शोधार्थी और गंभीर अध्येता की दृष्टि से इन दोनों महान कवियों के योगदान को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

अमीर खुसरो का योगदान:

- **खड़ीबोली हिंदी के प्रथम कवि:** अमीर खुसरो को आधुनिक 'खड़ीबोली हिंदी' का पहला कवि माना जाता है। आज हम जिस खड़ीबोली हिंदी का प्रयोग करते हैं, उसकी मजबूत नींव खुसरो ने ही अपनी कविताओं में रखी थी।
- **मनोरंजन और लोक-संस्कृति:** उन्होंने अपनी पहेलियों, मुकरियों और दो-सखुनो के माध्यम से आम जनता के मनोरंजन को साहित्य का विषय बनाया। उनका साहित्य राजदरबारों के लिए नहीं, बल्कि आम लोगों की चौपालों के लिए था।
- **सांस्कृतिक समन्वय (गंगा-जमुनी तहजीब):** खुसरो ने अपनी रचनाओं में फारसी और देशी हिंदी (हिंदवी) का इतना सुंदर मेल किया कि वे हिंदू और मुस्लिम दोनों संस्कृतियों को जोड़ने वाले महान सेतु बन गए।

विद्यापति का योगदान:

- **शृंगार और प्रेम का अद्वितीय वर्णन:** विद्यापति ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'पदावली' में राधा और कृष्ण के प्रेम का अत्यंत कोमल और शृंगारिक चित्रण किया है। उनके पदों में प्रेम और सौंदर्य की जो मिठास है, वह अद्वितीय है।
- **मैथिल कोकिल:** विद्यापति ने पुरानी अपभ्रंश को छोड़कर आम बोलचाल की 'मैथिली' भाषा (देशिल बअना) में इतनी मधुर कविताएँ लिखीं कि उन्हें 'मैथिल कोकिल' (मिथिला की कोयल) की उपाधि दी गई।
- **भक्तिकाल के लिए मार्ग तैयार करना:** यद्यपि विद्यापति मूल रूप से शृंगार के कवि थे, लेकिन राधा-कृष्ण की लीलाओं के माध्यम से उन्होंने जिस पद-परंपरा की शुरुआत की, उसी ने आगे चलकर सूरदास जैसे भक्तिकालीन कवियों के लिए एक मजबूत ज़मीन तैयार की।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो आदिकाल की रूखी और कठोर परंपरा के बीच अमीर खुसरो ने साहित्य को खड़ीबोली की रवानी दी, जबकि विद्यापति ने उसे भाषा की मिठास और शृंगार की गहराई प्रदान की।

प्रश्न 14: भक्तिकाल के उदय की ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि क्या थी?

भक्तिकाल (संवत् 1375 से 1700) हिंदी साहित्य का सबसे समृद्ध काल है जिसे 'स्वर्ण युग' भी कहा जाता है। इस महान युग का उदय अचानक नहीं हुआ था, बल्कि उस समय की विशेष ऐतिहासिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों ने इसकी नींव तैयार की थी। इसे निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- **राजनीतिक हताशा और मुस्लिम सत्ता की स्थापना:** आदिकाल के अंत तक उत्तर भारत में मुस्लिम शासकों (सल्तनत काल) का पूरी तरह कब्ज़ा हो चुका था और हिंदू राजा हार चुके थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, अपने गिरे हुए गौरव और हताशा के समय में हिंदू जनता के पास ईश्वर की शरण में जाने के अलावा और कोई दूसरा रास्ता नहीं बचा था।
- **जाति-पाँति और सामाजिक भेदभाव:** तत्कालीन हिंदू समाज में छुआछूत, ऊँच-नीच और जाति-पाँति का भेदभाव अपने चरम पर था। निचली जातियों को धर्म और समाज में बराबरी का हक नहीं था। ऐसे में कबीर और रैदास जैसे संतों ने एक ऐसे ईश्वर की भक्ति पर जोर दिया, जहाँ कोई छोटा-बड़ा न हो।
- **धार्मिक कर्मकांड और पाखंड:** धर्म के नाम पर जटिल पूजा-पाठ, कर्मकांड, बलि-प्रथा और अंधविश्वास बहुत बढ़ गए थे। आम जनता इन सबसे परेशान हो चुकी थी। भक्ति आंदोलन ने ईश्वर को पाने का एक बहुत ही सरल रास्ता—'सच्चा प्रेम और नाम-स्मरण'—दिखाया, जिसे कोई भी अपना सकता था।

- **दक्षिण भारत से भक्ति की लहर:** भक्ति की मूल शुरुआत दक्षिण भारत में 'आलवार' संतों द्वारा बहुत पहले ही हो चुकी थी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि उत्तर भारत में भक्ति का उदय कोई अचानक हुई घटना नहीं थी, बल्कि यह दक्षिण भारत की उसी पुरानी परंपरा का स्वाभाविक विकास था।
- **सूफी संतों का प्रभाव:** इस्लाम के साथ आए सूफी संतों ने ईश्वर को 'प्रेम' (इश्क हकीकी) के माध्यम से पाने का संदेश दिया। इस सूफी प्रेम-मार्ग ने हिंदू और मुस्लिम दोनों समुदायों की दूरियां कम कीं और समाज में भक्ति का एक उदार माहौल बनाया।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो, भक्तिकाल का उदय बाहरी आक्रमणों से उपजी निराशा, समाज में फैली ऊँच-नीच और धार्मिक आडंबरों के खिलाफ एक मौन क्रांति थी। इसने आम जनता को एक बहुत ही सुरक्षित, सरल और समानता से भरा आध्यात्मिक आश्रय प्रदान किया।

प्रश्न 15: भक्तिकालीन काव्य की प्रमुख विशेषताओं (प्रवृत्तियों) का विस्तार से वर्णन कीजिए।

हिंदी साहित्य में भक्तिकाल (संवत् 1375 से 1700) को 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। यद्यपि इस काल में निर्गुण (ईश्वर का निराकार रूप) और सगुण (ईश्वर का साकार रूप) जैसी अलग-अलग धाराएँ थीं, फिर भी पूरे भक्तिकालीन काव्य की कुछ सामान्य और प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- **ईश्वर के प्रति उत्कृष्ट प्रेम (भक्ति की प्रधानता):** इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें 'ज्ञान' और 'कर्म' से ज्यादा महत्व ईश्वर के प्रति सच्चे 'प्रेम' और 'समर्पण' को दिया गया। इन कवियों के लिए स्वर्ग या मोक्ष से भी ज्यादा जरूरी ईश्वर की सच्ची भक्ति थी।
- **गुरु की अपार महिमा:** कबीरदास से लेकर तुलसीदास और सूरदास तक, सभी भक्त कवियों ने 'गुरु' (मार्गदर्शक) को सबसे ऊँचा स्थान दिया है। उनका मानना था कि गुरु के ज्ञान और कृपा के बिना मनुष्य ईश्वर तक कभी नहीं पहुँच सकता (जैसे- "गुरु गोबिंद दोऊ खड़े...")
- **अहंकार (घमंड) का त्याग:** सभी संतों ने एक स्वर में यह माना कि मनुष्य के भीतर बैठा 'मैं' (अहंकार) ही ईश्वर को पाने में सबसे बड़ी रुकावट है। जब तक हृदय से घमंड दूर नहीं होगा, तब तक वहाँ ईश्वर का वास नहीं हो सकता।
- **धार्मिक पाखंडों और कुरीतियों का विरोध:** विशेषकर निर्गुण संतों (जैसे कबीर और रैदास) ने समाज में फैले अंधविश्वासों, मूर्ति-पूजा, छुआछूत, ऊँच-नीच और हिंदू-मुस्लिम दोनों के धार्मिक दिखावों का अत्यंत कठोरता से विरोध किया।
- **लोक-कल्याण और समन्वय की भावना:** भक्तिकाल की कविता केवल निजी मोक्ष के लिए नहीं थी, बल्कि इसमें पूरे समाज के कल्याण की भावना छिपी थी। गोस्वामी तुलसीदास ने समाज को जोड़ने के लिए ऊँच-नीच, सगुण-निर्गुण और शैव-वैष्णव के बीच अद्भुत समन्वय (तालमेल) स्थापित किया।
- **जनभाषा (लोकभाषा) का प्रयोग:** अपनी बात को आम जनता तक पहुँचाने के लिए इन कवियों ने कठिन संस्कृत की जगह आम बोलचाल की भाषाओं जैसे—अवधी (रामचरितमानस), ब्रजभाषा (सूरसागर) और सधुक्कड़ी (कबीर की भाषा) का बहुत ही सुंदर प्रयोग किया।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो भक्तिकाल की कविता केवल पूजा-पाठ या मंदिर-मस्जिद की कविता नहीं है। यह असल में एक सच्चे, पवित्र और समानता से भरे समाज के निर्माण का एक महान 'सांस्कृतिक आंदोलन' है।

प्रश्न 16: निर्गुण संत काव्य में कबीरदास के समाज-सुधारक रूप को स्पष्ट कीजिए।

कबीरदास केवल एक महान संत और कवि ही नहीं थे, बल्कि वे हिंदी साहित्य के सबसे निर्भीक (निडर) और महान 'समाज-सुधारक' भी थे। 15वीं सदी के उस दौर में जब समाज अंधविश्वासों और भेदभाव से ग्रस्त था, तब कबीर ने समाज को सुधारने का बीड़ा उठाया। उनके समाज-सुधारक रूप को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- **धार्मिक पाखंडों का कठोर विरोध:** कबीर ने हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों में फैले दिखावे और झूठे कर्मकांडों का खुलकर विरोध किया। उन्होंने हिंदुओं की मूर्ति-पूजा ("पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार") और मुस्लिमों की अज्ञान ("कांकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चिनाय") दोनों पर समान रूप से तीखा व्यंग्य किया।
- **जाति-पाँति और छुआछूत का खंडन:** कबीर जन्म के आधार पर इंसान-इंसान के बीच होने वाले भेदभाव के सख्त खिलाफ थे। उनका स्पष्ट मानना था कि ईश्वर की नज़र में कोई ब्राह्मण या शूद्र नहीं है। उन्होंने डंके की चोट पर कहा— *"जाति पाँति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।"*
- **हिंदू-मुस्लिम एकता पर जोर:** कबीर ने समाज को बांटने वाली सांप्रदायिक सोच पर गहरा प्रहार किया। उन्होंने समाज को यह समझाया कि राम और रहीम, केशव और अल्लाह एक ही ईश्वर के अलग-अलग नाम हैं। उनका मुख्य उद्देश्य दोनों समुदायों के बीच की नफरत को खत्म करना था।
- **सच्चे आचरण (चरित्र) पर बल:** कबीर ने माला जपने, तिलक लगाने या तीर्थ यात्रा करने से ज्यादा महत्व मनुष्य के 'स्वच्छ चरित्र' और 'ईमानदारी' को दिया। उनका मानना था कि मन के मैले होने पर बाहर का दिखावा बेकार है— *"माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं... मनवा तो चहुं दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।"*
- **अहिंसा का संदेश:** कबीर ने धर्म या स्वाद के नाम पर की जाने वाली पशुबलि और मांसाहार का कड़ा विरोध किया और सभी जीवों के प्रति दया का भाव रखने का उपदेश दिया।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो कबीरदास एक ऐसे सच्चे वैद्य (डॉक्टर) थे, जिन्होंने तत्कालीन समाज की धार्मिक और सामाजिक बीमारियों की सही नब्ज पहचानी और अपने तीखे वचनों से उनका कड़वा लेकिन अचूक इलाज किया। उनकी यही समाज-सुधारक दृष्टि उन्हें आज भी सबसे अधिक प्रासंगिक बनाती है।

प्रश्न 17: 'कबीर एक महान संत और समाज-सुधारक ही नहीं, अद्वितीय कवि भी हैं।' इस कथन के परिप्रेक्ष्य में उन विशेषताओं का निर्देश कीजिए जो कबीर के काव्य की अद्वितीयता के कारण हैं।

कबीर के काव्य को अद्वितीय बनाने वाली प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- **विभिन्न विद्वानों का दृष्टिकोण:** आचार्य शुक्ल ने कबीर को मूलतः 'उपदेशक' माना है, द्विवेदी जी ने उनके 'भक्त रूप' पर बल दिया है, और डॉ. धर्मवीर ने उन्हें 'समाज सुधारक' के रूप में प्रतिष्ठित किया है; किंतु उनका व्यक्तित्व कुछ भी हो, उनके काव्य की श्रेष्ठता निर्विवाद है।
- **अद्वितीयता के मूल तत्त्व:** कबीर के काव्य में साफगोई, क्रांतिकारी तेवर, भावनात्मक रहस्यवाद की तड़प, भाषा की सरलता और विविध काव्य विषयों की एक-साथ उपस्थिति उनके काव्य को अद्वितीय बनाती है।
- **भावनात्मक रहस्यवाद में विरह की तड़प:** उनकी साधनात्मक रहस्यवाद की कविताएँ भले ही उच्च कोटि की न हों, परंतु भावनात्मक रहस्यवाद में सूफियाना भाव और 'मिलन की जो तड़प' दिखती है, वह बेजोड़ है (उदाहरण: *"तलफै बिन बालम मोर जिया..."*)।

- **समाज सुधारक का आक्रामक तेवर:** एक ओर वे लीन भक्त हैं, तो दूसरी ओर समाज की समस्याओं पर आक्रामक प्रहार करने वाले सुधारक हैं; उनकी यह आक्रामकता उनकी गहन प्रतिबद्धता और 'घरफूँक साहस' से उपजती है (उदाहरण: "हम घर जारा अपना...")।
- **सहज भाषा और सटीक शब्द-चयन:** कुरीतियों और सांप्रदायिकता पर चोट करने वाली उनकी आक्रामकता बेहद सरल और सहज भाषा में व्यक्त हुई है, जहाँ उनका शब्द चयन बहुत सटीक है (उदाहरण: "ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय...")।
- **सर्वोच्च व्यंग्य क्षमता और भावुकता:** कबीर स्वयं सचेत कवि नहीं थे ("जिन तुम जान्यो गीत हैं, वह निज ब्रह्म विचार"), किंतु उनकी व्यंग्य क्षमता हिंदी साहित्य में सर्वोच्च स्थान रखती है और ईश्वर-मिलन की कविताओं की मधुरता बिहारी जैसे शृंगारिक कवियों पर भी भारी पड़ती है।
- **वाणी के डिक्टेटर:** शिल्प और भाषा पर असाधारण अधिकार होने के कारण वे 'वाणी के डिक्टेटर' कहलाते हैं।

प्रश्न 18: संत रविदास (रैदास) और दादू दयाल की कविताओं की मुख्य बातें बताइए।

हिंदी साहित्य की 'निर्गुण संत परंपरा' में कबीरदास के बाद संत रविदास (रैदास) और दादू दयाल का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। जहाँ कबीर की शैली में एक तीखापन और कड़वाहट थी, वहीं इन दोनों संतों की कविताओं में अद्भुत विनम्रता, शांति और सरलता देखने को मिलती है। इनकी कविताओं की मुख्य बातें इस प्रकार हैं:

संत रविदास (रैदास) के काव्य की मुख्य बातें:

- **दास्य भाव की सच्ची भक्ति:** रैदास की भक्ति में बहुत अधिक विनम्रता है। वे स्वयं को तुच्छ (दास) और ईश्वर को महान (स्वामी) मानते थे। उनका प्रसिद्ध पद— "प्रभु जी तुम चंदन हम पानी..." इसी अटूट और गहरे प्रेम का सबसे सुंदर उदाहरण है।
- **आंतरिक पवित्रता पर जोर:** उन्होंने मूर्ति-पूजा और तीर्थ-यात्रा जैसे बाहरी दिखावों को व्यर्थ बताया। उनका स्पष्ट मानना था कि यदि मन पवित्र है, तो घर में ही तीर्थ है (जैसे— "मन चंगा तो कठौती में गंगा")।
- **जाति-पाँति का सहज विरोध:** एक शोषित वर्ग से आने के बावजूद, रैदास ने बिना किसी गुस्से के, बड़ी ही सहजता से छुआछूत का विरोध किया। उन्होंने साबित किया कि इंसान जन्म या जाति से नहीं, बल्कि कर्म और भक्ति से ऊँचा होता है।

संत दादू दयाल के काव्य की मुख्य बातें:

- **विरोध में विनम्रता (सौम्यता):** दादू दयाल ने भी समाज की बुराइयों और पाखंडों पर चोट की, लेकिन उनका तरीका आक्रामक या कठोर नहीं था। उनकी भाषा और शैली में एक सूफी संतों जैसी मिठास थी।
- **समन्वय और निष्पक्षता:** दादू किसी एक धर्म या संप्रदाय के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता पर जोर दिया और एक ऐसे रास्ते का समर्थन किया जो सभी सांप्रदायिक विवादों से दूर हो (इसे 'निपक' या निष्पक्ष मार्ग कहा गया)।
- **रहस्यवाद और गुरु-महिमा:** उनकी कविताओं में ईश्वर (परमात्मा) से मिलन की तड़प और गुरु के प्रति असीम आदर साफ दिखाई देता है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो रैदास और दादू दयाल ने अपनी आसान और मीठी लोकभाषा के माध्यम से समाज को यह संदेश दिया कि ईश्वर को पाने के लिए किसी विशेष वेशभूषा, कर्मकांड या उच्च कुल की नहीं, बल्कि केवल एक पवित्र और सच्चे हृदय की आवश्यकता होती है।

प्रश्न 19: निर्गुण परंपरा में सुंदरदास के काव्य और उनके शास्त्रीय ज्ञान पर प्रकाश डालिए।

भक्तिकाल की निर्गुण संत परंपरा (ज्ञानमार्गी शाखा) में संत सुंदरदास का स्थान सबसे अलग और विशिष्ट है। वे संत दादू दयाल के शिष्य थे। जहाँ कबीर और रैदास जैसे महान संत पुस्तकीय ज्ञान से दूर थे, वहीं सुंदरदास अपने गहन शास्त्रीय ज्ञान और काव्य-कला के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके काव्य की मुख्य बातें इस प्रकार हैं:

- **सबसे अधिक शिक्षित और विद्वान संत:** निर्गुण परंपरा के अधिकांश संत अनपढ़ थे (जैसे कबीर ने कहा था- "मसि कागद छ्यो नहीं"), लेकिन सुंदरदास ने काशी (वाराणसी) में रहकर कई वर्षों तक संस्कृत, व्याकरण, वेदांत और दर्शनशास्त्र की विधिवत शिक्षा प्राप्त की थी। वे इस परंपरा के सबसे पढ़े-लिखे संत थे।
- **शुद्ध और परिष्कृत भाषा:** अन्य संतों ने जहाँ अपनी बात कहने के लिए 'सधुक्कड़ी' या खिचड़ी भाषा का प्रयोग किया, वहीं सुंदरदास की भाषा बहुत ही शुद्ध, सुसंस्कृत और व्याकरण के नियमों से बंधी हुई साहित्यिक 'ब्रजभाषा' थी।
- **छंदों और अलंकारों का महारथी:** सुंदरदास को कविता के नियमों (पिंगल शास्त्र) का बहुत गहरा ज्ञान था। उन्होंने दोहा-चौपाई से आगे बढ़कर 'कवित्त' और 'सवैया' जैसे कठिन छंदों का बहुत ही कुशलता और सुंदरता के साथ प्रयोग किया।
- **शृंगार रस का कड़ा विरोध:** एक पक्के वैरागी संत होने के कारण, सुंदरदास शृंगार रस और प्रेम-लीलाओं की कविताओं के सख्त खिलाफ थे। उन्होंने केशवदास की 'रसिकप्रिया' और नंददास की 'रसमंजरी' जैसी शृंगारिक किताबों की कड़ी आलोचना की थी।
- **देशाटन और हास्य-व्यंग्य:** सुंदरदास ने भारत के कई हिस्सों की यात्रा की थी। उन्होंने गुजरात, मालवा और मारवाड़ जैसे क्षेत्रों के लोगों के रहन-सहन, खान-पान और वहां की कमियों पर बहुत ही रोचक और हल्का-फुल्का हास्य-व्यंग्य भी लिखा है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो संत सुंदरदास निर्गुण परंपरा के इकलौते ऐसे कवि हैं, जिन्होंने वैराग्य और भक्ति के सूखे उपदेशों को भी अपनी शास्त्रीय विद्वता और उच्च कोटि की काव्य-कला के माध्यम से अत्यंत सुंदर बना दिया। उनके भीतर एक सच्चा 'संत' और एक कुशल 'कवि' दोनों एक साथ निवास करते थे।

प्रश्न 20: सूफी (प्रेमाख्यानक) काव्य परंपरा में कुतुबन और मंझन के योगदान को समझाइए।

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में ईश्वर को 'प्रेम' के माध्यम से पाने का रास्ता दिखाने वाली शाखा को 'सूफी या प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा' कहा जाता है। मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' से पहले, कुतुबन और मंझन जैसे महान सूफी कवियों ने ही इस परंपरा की मजबूत नींव रखी थी। इनका योगदान इस प्रकार है:

कुतुबन का योगदान:

- **प्रथम सूफी कवि:** आचार्य रामचंद्र शुक्ल कुतुबन को सूफी काव्य परंपरा का पहला कवि मानते हैं। इन्होंने सन् 1503 ई. में 'मृगावती' नामक प्रसिद्ध प्रेमाख्यानक ग्रंथ की रचना की थी।
- **कथा और प्रतीक:** 'मृगावती' में चंद्रनगर के राजकुमार और कंचनपुर की राजकुमारी (मृगावती) की प्रेम कहानी है। इसमें राजकुमार को 'आत्मा' का और मृगावती को 'परमात्मा' (ईश्वर) का प्रतीक माना गया है।

- **काव्य-शिल्प का निर्धारण:** कुतुबन ने ही सबसे पहले ठेठ 'अवधी' भाषा और 'दोहा-चौपाई' शैली का सफलतापूर्वक प्रयोग किया, जो आगे चलकर सूफी परंपरा का मानक (Standard) बन गया।

मंझन का योगदान:

- **'मधुमालती' की रचना:** मंझन ने सन् 1545 ई. में 'मधुमालती' नामक बेहतरीन सूफी ग्रंथ लिखा, जिसमें राजकुमार मनोहर और राजकुमारी मधुमालती की अलौकिक प्रेम कथा का वर्णन है।
- **समानांतर प्रेम कथा का प्रयोग:** मंझन ने सूफी परंपरा में एक नया प्रयोग किया। उन्होंने मुख्य प्रेम कथा के साथ-साथ ताराचंद और प्रेमा की एक और प्रेम कथा भी चलाई, जो एक-दूसरे की मदद करते हैं। यह हिंदी साहित्य का एक नया और अनूठा प्रयोग था।
- **प्रेम की पवित्रता और अमरता:** मंझन ने साधारण लौकिक प्रेम (इश्क मिजाजी) को आधार बनाकर ईश्वरीय प्रेम (इश्क हकीकी) की पवित्रता और अमरता को बहुत ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो कुतुबन और मंझन ने ही अवधी भाषा, लोक-कथाओं और रहस्यवाद का वह खूबसूरत ढांचा तैयार किया था, जिस पर आगे चलकर मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' जैसा महान और कालजयी ग्रंथ रचा। सूफी परंपरा के विकास में इन दोनों का योगदान ऐतिहासिक है।

प्रश्न 21: मलिक मुहम्मद जायसी के प्रसिद्ध महाकाव्य 'पद्मावत' की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

'पद्मावत' (सन् 1540 ई.) हिंदी साहित्य की सूफी (प्रेमाख्यानक) परंपरा का सबसे श्रेष्ठ और कालजयी महाकाव्य है। इसकी रचना मलिक मुहम्मद जायसी ने की थी। यह केवल एक प्रेम कहानी नहीं है, बल्कि इसमें दर्शन और रहस्यवाद का गहरा सागर छिपा है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

- **सांसारिक से ईश्वरीय प्रेम का संदेश:** 'पद्मावत' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती के लौकिक प्रेम (इश्क मिजाजी) के बहाने, मनुष्य और ईश्वर (परमात्मा) के बीच के अलौकिक प्रेम (इश्क हकीकी) को दर्शाता है।
- **शानदार प्रतीक योजना:** जायसी ने इस कहानी के हर पात्र और स्थान को एक आध्यात्मिक 'प्रतीक' (Symbol) बना दिया है। जैसे—चित्तौड़ 'शरीर' का, राजा रत्नसेन 'मन' का, पद्मावती 'सात्विक बुद्धि' (ईश्वर) का, और अलाउद्दीन 'माया' (बुराई) का प्रतीक है।
- **इतिहास और कल्पना का सुंदर संगम:** इस महाकाव्य का पहला आधा हिस्सा पूरी तरह से जायसी की कल्पना पर आधारित है (रत्नसेन का पद्मावती की खोज में सिंहल द्वीप जाना), जबकि दूसरा आधा हिस्सा पूरी तरह ऐतिहासिक यथार्थ है (अलाउद्दीन खिलजी का चित्तौड़ पर हमला और जौहर)।
- **नागमती का वियोग वर्णन:** राजा रत्नसेन की पहली पत्नी 'नागमती' की जुदाई (विरह) का वर्णन हिंदी साहित्य की सबसे अमूल्य धरोहर माना जाता है। जायसी ने 'बारहमासा' (12 महीनों के आधार पर) के माध्यम से एक साधारण स्त्री की पीड़ा का बहुत ही सच्चा, मार्मिक और रुला देने वाला चित्रण किया है।
- **ठेठ अवधी भाषा और लोक-संस्कृति:** जायसी ने इसे लिखने के लिए विद्वानों की भाषा नहीं, बल्कि आम जनता की मीठी और 'ठेठ अवधी' भाषा का प्रयोग किया। इसमें हिंदू घरों के रीति-रिवाजों, त्योहारों और लोक-संस्कृति का अत्यंत सुंदर वर्णन मिलता है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो 'पद्मावत' प्रेम, बलिदान और आध्यात्मिक रहस्य का एक ऐसा महान ग्रंथ है, जिसने दो अलग-अलग संस्कृतियों (हिंदू और मुस्लिम) को 'प्रेम' के धागे में पिरोने का ऐतिहासिक काम किया।

प्रश्न 22: 'जायसी द्वारा प्रस्तुत नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी साहित्य की अद्वितीय रचना है'- इस विचार से आप कहाँ तक सहमत हैं?

नागमती के विरह-वर्णन को अद्वितीय बनाने वाली प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- आचार्य शुक्ल ने इसे हिन्दी साहित्य की अद्वितीय और सर्वश्रेष्ठ विरह रचना माना है, क्योंकि जायसी ने इसमें अत्यंत रमणीय और मार्मिक तत्वों का समावेश किया है।
- **सामान्य नारी के रूप में चित्रण:** इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें नागमती को 'रानी' के बजाय एक 'विरहदग्ध सामान्य नारी' के रूप में चित्रित किया गया है, जिससे पाठकों के साथ इसका अद्भुत साधारणीकरण हो सका है।
- **आत्मविस्तार की भावना:** विरह में नागमती का अहंकार टूटता है और आत्मविस्तार होता है; जो रानी कभी बड़े-बड़े राजाओं पर ध्यान नहीं देती थी, वह अब पशु-पक्षियों (भौंरा, काग) से अपनी हृदय वेदना साझा करती है।
- **गार्हस्थिक चेतना और अटूट प्रेम:** नागमती के वियोग में भारतीय गार्हस्थिक चेतना का अद्भुत समावेश है; पति के दायित्वहीन व्यवहार के बावजूद वह अपने प्रेम पर पूरी तरह दृढ़ है।
- **आधुनिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन:** यद्यपि आधुनिक दृष्टि से इसे मध्यकालीन नारी की दासता और विवश स्थितियों का सूक्ष्म चित्रण भी माना जा सकता है, फिर भी अपनी व्यापकता, साधारणीकरण क्षमता और प्रेम की प्रतिबद्धता के कारण यह निस्संदेह एक अद्वितीय रचना है।

प्रश्न 23: गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में 'लोक-समन्वय' की भावना को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

गोस्वामी तुलसीदास केवल एक भक्त कवि नहीं थे, बल्कि वे भारतीय समाज को जोड़ने वाले एक महान 'समन्वयवादी' (सबको साथ लेकर चलने वाले) विचारक थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है—*"तुलसीदास का सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।"* उनके काव्य में 'लोक-समन्वय' (समाज को जोड़ने) की भावना को निम्नलिखित बिंदुओं से आसानी से समझा जा सकता है:

- **सगुण और निर्गुण का समन्वय:** उस समय समाज में इस बात पर गहरा विवाद था कि ईश्वर सगुण (साकार) है या निर्गुण (निराकार)। तुलसीदास ने दोनों को एक मानते हुए यह विवाद खत्म कर दिया। उन्होंने लिखा— *"अगुनहि सगुनहि नहिं कछु भेदा"* (यानी निर्गुण और सगुण में कोई भेद नहीं है)।
- **शैव और वैष्णव का समन्वय:** समाज शिव के भक्तों (शैव) और विष्णु/राम के भक्तों (वैष्णव) में बंटा हुआ था और आपस में लड़ता था। तुलसीदास ने राम के मुँह से कहलवाया— *"सिव द्रोही मम दास कहावा, सो नर मोहि सपनेहुँ नहिं पावा"* (अर्थात्, जो शिव का विरोधी है, वह मेरा भक्त हो ही नहीं सकता)।
- **ज्ञान और भक्ति का समन्वय:** उन्होंने ज्ञानियों (विद्वानों) और भक्तों (आम जनता) के बीच की खाई को मिटाते हुए ज्ञान और भक्ति दोनों को ईश्वर तक पहुँचने का समान और पवित्र रास्ता बताया।
- **राजा और प्रजा (ऊँच-नीच) का समन्वय:** 'रामराज्य' के माध्यम से उन्होंने एक ऐसे समाज का चित्र खींचा जहाँ कोई छोटा-बड़ा नहीं है। भगवान राम द्वारा भीलनी शबरी के जूठे बेर खाना और केवट (निषादराज) को गले लगाना, इसी सामाजिक बराबरी का सबसे बड़ा उदाहरण है।
- **पारिवारिक समन्वय:** उन्होंने 'रामचरितमानस' में भाई-भाई (राम-भरत), पति-पत्नी (राम-सीता) और पिता-पुत्र के आदर्श रिश्तों को दिखाकर तत्कालीन समाज के टूटते हुए परिवारों को जोड़ने का अभूतपूर्व काम किया।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो, तुलसीदास ने अपने समय के धर्म, समाज और परिवार में फैले हुए हर तरह के भेदभाव को मिटाकर उन्हें एकता के सूत्र में बांधा। यही कारण है कि 'रामचरितमानस' आज भी घर-घर में पूजा जाता है।

प्रश्न 24: गोस्वामी तुलसीदास की 'रामराज्य की परिकल्पना' पर प्रकाश डालिए।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रस्तुत 'रामराज्य' की परिकल्पना उनके काव्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है, जिसे निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

- **राजनीतिक प्रगतिशीलता और यथार्थबोध:** रामराज्य की परिकल्पना तुलसीदास की राजनीतिक प्रगतिशीलता का सर्वोच्च प्रमाण है। वे अपने समय की राजनीतिक व्यवस्था के कड़े आलोचक थे और उन्होंने शासकों को उनके दंडनीय कार्यों के लिए सचेत किया।
- **सकारात्मक विकल्प की प्रस्तुति:** तुलसीदास ने केवल वर्तमान व्यवस्था की आलोचना करके अपने दायित्व को समाप्त नहीं माना, बल्कि समाज के सामने 'रामराज्य' के रूप में एक आदर्श राजनीतिक और कल्याणकारी विकल्प भी प्रस्तुत किया।
- **सार्वभौमिक और लोक-कल्याणकारी राज्य:** उनका रामराज्य किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं है ("भूमि सप्त सागर मेखला एक भूप रघुपति कोसला"), बल्कि यह एक ऐसा कल्याणकारी राज्य है जहाँ सभी नर-नारी धर्म का पालन करते हैं और किसी को कोई रोग या दुःख नहीं है।
- **त्रय तापों और दरिद्रता से मुक्ति:** रामराज्य में किसी भी व्यक्ति को दैहिक, दैविक या भौतिक ताप (कष्ट) नहीं सताते। वहाँ न कोई छोटी उम्र में मरता है, न ही कोई दरिद्र और दुखी है ("नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना")।
- **राजा और प्रजा के बीच आदर्श संबंध:** तुलसी के रामराज्य में राजा और प्रजा के कर्तव्यों का स्पष्ट निर्धारण किया गया है। प्रजा के लिए राजा की बात मानना धर्म है, लेकिन राजा का मुख्य कर्तव्य प्रजा का हितैषी होना है।
- **प्रजा का लोकतांत्रिक अधिकार:** इस व्यवस्था की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यदि राजा कुछ अनुचित या अनीतिपूर्ण कार्य करता है, तो प्रजा को उसे रोकने और टोकने का पूरा अधिकार प्राप्त है ("जौ अनीति कछु भाषौं भाई! तौ मोहिं बरजहु भय बिसराई")।

प्रश्न 25: क्या आज के समय में गोस्वामी तुलसीदास के काव्य की कोई प्रासंगिकता है? तार्किक उत्तर दीजिए।

गोस्वामी तुलसीदास का काव्य आज के समय में भी पूरी तरह प्रासंगिक है। इसके पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं:

- **समस्याओं की निरंतरता:** तुलसी ने अपने समय (कलियुग) की जिन सामाजिक विसंगतियों, कपट और मिथ्या आचरण पर चिंता व्यक्त की थी, वे समस्याएँ आज नैतिक गिरावट, बढ़ते अपराधीकरण और भ्रष्टाचार के रूप में समाज में और अधिक विकट रूप में मौजूद हैं।
- **गरीबी और बेरोजगारी की चुनौती:** तुलसीदास ने अपनी कविताओं में गरीबी को सबसे बड़ा दुःख माना था ("नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं")। गरीबी और बेरोजगारी आज भी पूरी दुनिया के सामने एक प्रमुख चुनौती बनी हुई है, जिससे उनका दृष्टिकोण आज भी प्रासंगिक प्रतीत होता है।
- **अवसरवादी राजनीति पर प्रहार:** तुलसी के समय में भी राजनीति 'सेवा' की वस्तु न रहकर 'भोग' की वस्तु बन गई थी; आज की अवसरवादी राजनीति के परिदृश्य में यह समस्या और भी अधिक फल-फूल रही है।

- **मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति का संदेश:** आज के लोक कल्याणकारी राज्य का मुख्य उद्देश्य नागरिकों को भोजन, आवास और जल जैसी मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराना है; तुलसी का 'रामराज्य' भी एक ऐसे ही समाज की कल्पना करता है जहाँ कोई गरीब या दुखी न हो।
- **आधुनिक मानव विकास सूचकांक से समानता:** तुलसी ने जिस समाज की कल्पना की थी (जहाँ अल्प मृत्यु न हो, दरिद्रता न हो, और सभी स्वस्थ हों), वह आज के 'मानव विकास सूचकांक' (Human Development Index) के पैमानों पर पूरी तरह खरा उतरता है।
- **सुशासन (Good Governance) की वकालत:** तुलसी का यह स्पष्ट मानना था कि राजा को जनता के प्रति पूर्णतः प्रतिबद्ध होना चाहिए। उनका यह कथन कि "जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नरपु नरक अधिकारी" आज के सुशासन (Good Governance) का सबसे बड़ा और अनिवार्य तत्व है।

प्रश्न 26: सूरदास के काव्य में वात्सल्य रस और शृंगार रस के चित्रण का मूल्यांकन कीजिए।

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में कृष्ण-भक्ति शाखा के प्रमुख कवि महाकवि सूरदास को वात्सल्य और शृंगार रस का सम्राट माना जाता है। उनके द्वारा रचित 'सूरसागर' में इन दोनों रसों का जो जीवंत और सूक्ष्म चित्रण मिलता है, वह हिंदी साहित्य में अद्वितीय है। इसे निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- **वात्सल्य रस का कोना-कोना खंगालना (अद्वितीय बाल-वर्णन):** सूरदास से पहले हिंदी साहित्य में बच्चों के प्रेम और स्नेह (वात्सल्य रस) को इतना महत्व नहीं मिला था। सूरदास ने बालकृष्ण के जन्म से लेकर उनके घुटनों चलने, माखन खाने, जिद्ध करने, दाँत निकलने और चोटी बढ़ाने जैसी हर छोटी-बड़ी गतिविधि का इतना सजीव और आँखों देखा वर्णन किया है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा—
"सूरदास ने बाल-पक्ष का कोई भी कोना नहीं छोड़ा है।"
- **माँ यशोदा के प्रेम का मनोवैज्ञानिक चित्रण:** सूरदास ने माता यशोदा और बालक कृष्ण के आपसी प्रेम और नोकझोंक को बहुत ही स्वाभाविक रूप से दिखाया है। यशोदा का वात्सल्य, उनका लाड़-प्यार और कभी-कभी बालकृष्ण पर झल्लाना—यह सब माँ के मन की हर भावना को स्पष्ट करता है।
- **शृंगार रस के दोनों पक्षों का चित्रण:** सूरदास ने शृंगार रस के दोनों रूपों—संयोग शृंगार (मिलन) और वियोग शृंगार (बिछोह)—का अत्यंत सुंदर वर्णन किया है। संयोग पक्ष में राधा और कृष्ण की बाल-लीलाओं, मान-मनुहार और प्रेम-क्रीड़ाओं का मधुर चित्रण है।
- **भ्रमरगीत सार (वियोग शृंगार की पराकाष्ठा):** जब कृष्ण मथुरा चले जाते हैं और गोपियाँ उनके वियोग में तड़पती हैं, तब उद्धव उन्हें ज्ञान का संदेश देने आते हैं। इस 'भ्रमरगीत' प्रसंग में गोपियों का कृष्ण के प्रति सच्चा प्रेम और उनका विरह (दुख) इतना मार्मिक बन पड़ा है कि पाठक की आँखें नम हो जाती हैं।
- **सहज और मधुर ब्रजभाषा:** इन दोनों रसों के भावों को पूरी गहराई से कहने के लिए सूरदास ने अत्यंत कोमल, मधुर और प्रवाहपूर्ण 'ब्रजभाषा' का प्रयोग किया है, जो सीधे हृदय को छू लेती है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो सूरदास ने वात्सल्य रस का कोना-कोना झाँककर दुनिया को यह बता दिया कि एक बच्चे के प्रति स्नेह और प्रेम क्या होता है, और साथ ही शृंगार रस के माध्यम से प्रेम की पीड़ा को अमर कर दिया।

प्रश्न 27: अष्टछाप के कवियों में नंददास के साहित्यिक अवदान, उनकी 'जड़िया' उपाधि और भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

महाप्रभु वल्लभाचार्य और उनके पुत्र श्रीविठ्ठलनाथ द्वारा स्थापित 'अष्टछाप' के आठ कवियों में सूरदास के बाद यदि किसी कवि का नाम सबसे अधिक आदर से लिया जाता है, तो वे कृष्ण-भक्ति शाखा के महान कवि **नंददास** हैं। उनके साहित्यिक योगदान, उपाधि और भाषा-शैली को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- **'नंददास जड़िया' की प्रसिद्ध उपाधि:** नंददास अपनी कविताओं में शब्दों को सजाने, तुकबंदी करने और शिल्प को निखारने में इतने अधिक कुशल थे कि उनके बारे में एक प्रसिद्ध लोक-उक्ति बन गई— "और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया" (अर्थात् अन्य कवि तो केवल कविता गढ़ते हैं, लेकिन नंददास शब्दों को सोने की तरह जड़ते हैं)। उनकी इसी शब्दाकार और शिल्प-कुशलता के कारण उन्हें 'जड़िया' कवि की उपाधि मिली।
- **दार्शनिक और प्रबंधात्मक रचनाएँ:** सूरदास की कविताएँ ज्यादातर छोटे-छोटे 'पदों' (गीतों) में हैं, लेकिन नंददास ने प्रबंध-काव्य लिखने में महारत हासिल की। उनकी प्रसिद्ध रचना '**रासपंचाध्यायी**' हिंदी साहित्य की एक अमूल्य धरोहर है, जिसमें उन्होंने रूपक और उपमाओं के माध्यम से श्रीकृष्ण की रासलीला का अत्यंत सूक्ष्म और सुंदर वर्णन किया है।
- **अन्य प्रमुख रचनाएँ:** 'रासपंचाध्यायी' के अलावा उन्होंने 'भँवरगीत', 'सिद्धांत पंचाध्यायी', 'रूपमंजरी' और 'रसमंजरी' जैसी श्रेष्ठ रचनाएँ लिखकर कृष्ण-भक्ति और प्रेम के दार्शनिक पक्षों को बहुत गहराई से समझाया है।
- **परिपक्व और सुंदर ब्रजभाषा:** नंददास की भाषा अत्यंत साहित्यिक, परिष्कृत और व्याकरण के नियमों से बंधी हुई ब्रजभाषा है। उसमें फूहड़पन या लोक-भाषा की खुरदरापन के बजाय एक खास किस्म की शास्त्रीय मिठास और शालीनता दिखाई देती है।
- **शृंगार और भक्ति का समन्वय:** उनकी कविताओं में राधा-कृष्ण के प्रेम के साथ-साथ गहरी दार्शनिक और आध्यात्मिक भावना का बहुत ही सुंदर संतुलन देखने को मिलता है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो नंददास अष्टछाप के ऐसे विशिष्ट कवि थे जिन्होंने सूरदास की सहज और भावुक भक्ति-धारा को एक नया शास्त्रीय और कलात्मक रूप दिया। उनकी शब्द-योजना और काव्य-शिल्प ने कृष्ण-भक्ति साहित्य को अत्यंत समृद्ध बनाया।

प्रश्न 28: निर्गुण और सगुण काव्यधाराओं के बीच मुख्य अंतर क्या हैं? इनकी तुलना कीजिए।

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल (स्वर्ण युग) को मुख्य रूप से दो धाराओं में बाँटा गया है—**निर्गुण काव्यधारा** और **सगुण काव्यधारा**। इन दोनों धाराओं के विचारों, ईश्वर के स्वरूप और काव्य-शैली में बुनियादी अंतर रहे हैं, जिन्हें निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है:

- **ईश्वर का स्वरूप (आकार):**
 - **निर्गुण धारा:** इसमें ईश्वर का कोई आकार, रूप या रंग नहीं होता। वह निराकार, सर्वव्यापी और अज्ञात शक्ति है (कबीर, रैदास)।
 - **सगुण धारा:** इसमें ईश्वर साकार रूप में अवतार लेते हैं। उनके हाथ में धनुष-बाण या बंसी होती है और उनका एक निश्चित सुंदर रूप व नाम होता है (सूरदास, तुलसीदास)।
- **अवतारवाद में विश्वास:**
 - **निर्गुण संत:** ईश्वर कभी जन्म नहीं लेता और न ही वह किसी योनि में अवतार लेता है (अजस्र और अयोनिज)।

- **सगुण भक्त:** भक्तों की रक्षा और अधर्म का नाश करने के लिए ईश्वर समय-समय पर धरती पर मनुष्य या अन्य रूप में अवतार लेते हैं (जैसे राम और कृष्ण)।
- **मूर्ति-पूजा और कर्मकांड का विरोध बनाम समर्थन:**
 - **निर्गुण काव्य:** यह मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्रा, माला फेरने और बाहरी दिखावे का कड़ा विरोध करता है।
 - **सगुण काव्य:** यह मंदिरों में मूर्ति-पूजा, कथा-कीर्तन, उत्सव मनाने और पारंपरिक धार्मिक अनुष्ठानों पूरी तरह आस्था रखता है।
- **भाषा और अभिव्यक्ति का रूप:**
 - **निर्गुण संत:** इन्होंने अपनी बात कहने के लिए व्याकरण की परवाह नहीं की और आम बोलचाल की खिचड़ी या 'सधुक्कड़ी' भाषा का प्रयोग किया।
 - **सगुण भक्त:** इन्होंने साहित्यिक नियमों का पालन करते हुए अत्यंत परिष्कृत, मधुर और व्याकरणबद्ध 'ब्रजभाषा' (सूर) और 'अवधी' (तुलसी) का प्रयोग किया।
- **काव्य का मुख्य उद्देश्य:**
 - **निर्गुण धारा:** इसका मुख्य जोर ज्ञान, वैराग्य, अहंकार त्यागने और आंतरिक शुद्धि पर था।
 - **सगुण धारा:** इसका मुख्य जोर भगवान के प्रति अगाध प्रेम (भक्ति), लीला-गान और पारिवारिक-सामाजिक समन्वय पर था।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो, रास्ते दोनों के अलग थे—एक ने बिना रूप के भीतर झाँककर ईश्वर को पाया (निर्गुण), तो दूसरे ने रूपहले संसार में प्रेम और श्रद्धा के साथ भगवान को देखा (सगुण)। लेकिन दोनों का अंतिम लक्ष्य समाज में प्रेम, शांति और मानवता की स्थापना करना ही था।

प्रश्न 29: भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण युग' क्यों कहा जाता है? कारण सहित बताइए।

सर्वप्रथम प्रसिद्ध विद्वान जॉर्ज ग्रियर्सन ने भक्तिकाल (संवत् 1375 से 1700) को हिंदी साहित्य का '**स्वर्ण युग**' (Golden Age) कहा था। यह काल भाव, विचार, भाषा और शिल्प—हर दृष्टि से हिंदी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ और शिखर काल माना जाता है। इसे 'स्वर्ण युग' कहे जाने के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं:

- **महान और युगप्रवर्तक कवियों का एक साथ होना:** इस काल में कबीरदास, गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, मलिक मुहम्मद जायसी, मीराबाई, रैदास और रसखान जैसे अद्वितीय संत-कवि एक साथ हुए। पूरे साहित्येतिहास में इतनी महान विभूतियाँ किसी अन्य काल में एक साथ देखने को नहीं मिलतीं।
- **कालजयी और अमर ग्रंथों की रचना:** विश्व-साहित्य में स्थान पाने वाले अमर ग्रंथ इसी काल में रचे गए, जैसे—तुलसीदास का 'रामचरितमानस', सूरदास का 'सूरसागर', जायसी का 'पद्मावत' और कबीर की 'साखी व सबद' (बीजक)।
- **साहित्य का दरबारों से निकलकर लोक से जुड़ना:** आदिकाल और रीतिकाल का साहित्य जहाँ राजाओं की झूठी प्रशंसा (दरबारी चाटुकारिता) तक सीमित था, वहीं भक्तिकाल का साहित्य महलों की चारदीवारी से निकलकर आम जनता की झोपड़ी तक पहुँचा। यह सच्चे अर्थों में 'जन-साहित्य' था।
- **मानवता और सामाजिक समरसता की स्थापना:** इस काल के साहित्य ने जाति-पाँति, छुआछूत, ऊँच-नीच और धार्मिक पाखंडों को मिटाकर प्रेम, दया, समानता और भाईचारे की मजबूत नींव रखी।
- **समन्वयवादी और कल्याणकारी दृष्टिकोण:** तुलसीदास और अन्य कवियों ने सगुण-निर्गुण, शैव-वैष्णव और विभिन्न वर्गों के बीच ऐतिहासिक समन्वय स्थापित करके समाज को टूटने से बचाया।

- **भाषा और काव्य-शिल्प का चरमोत्कर्ष:** इस काल में 'अवधी' और 'ब्रजभाषा' अपने सबसे सुंदर और परिपक्व रूप में सामने आईं साथ ही दोहा, चौपाई, पद और सवैयों का सबसे उत्कृष्ट प्रयोग इसी युग में हुआ।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो भक्तिकाल में साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं, बल्कि मनुष्य की आत्मा और पूरे समाज को पवित्र बनाना था। भाव और कला दोनों पक्षों की अतुलनीय उत्कृष्टता के कारण ही इसे हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण युग' कहा जाता है।

प्रश्न 30: भक्तिकाल के अन्य (गौण) कवियों का हिंदी साहित्य के विकास में क्या महत्व है?

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में कबीर, तुलसी, सूर और जायसी जैसे महान और प्रमुख कवियों के अलावा कई अन्य 'गौण' (सहयोगी) कवि भी हुए हैं। इन कवियों ने भले ही महाकाव्य न लिखे हों, लेकिन हिंदी साहित्य और समाज के विकास में इनका योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। इसे निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- **भक्ति आंदोलन का व्यापक विस्तार:** मुख्य कवियों ने जहाँ बड़े केंद्र स्थापित किए, वहीं इन गौण कवियों (जैसे नरहरिदास, अग्रदास, हृदयराम, प्राणनाथ आदि) ने भक्ति के संदेश को देश के कोने-कोने और छोटे गाँवों तक पहुँचाया। इससे भक्ति एक बड़ा 'आंदोलन' बन सकी।
- **काव्य-रूपों और शैलियों में विविधता:** इन कवियों ने केवल पारंपरिक पद या दोहे ही नहीं लिखे, बल्कि प्रबंधकाव्य, स्तुति गान, मुक्तक और संवाद शैली जैसे नए काव्य-रूपों का प्रयोग करके साहित्य के दायरे को और ज्यादा विस्तृत किया।
- **लोक-संस्कृति और क्षेत्रीय भाषाओं का पोषण:** इन कवियों ने अपनी स्थानीय बोलियों और लोक-संस्कृति के तत्वों को कविताओं में जगह दी। इससे ब्रज और अवधी के अलावा अन्य क्षेत्रीय बोलियों का भी साहित्यिक विकास हुआ।
- **भक्ति की विभिन्न धाराओं को स्थिरता देना:** कुछ गौण कवि राम और कृष्ण भक्ति के अलावा उपासना के अन्य छोटे रूपों (जैसे रामानुज, निम्बार्क या नाथ-प्रभावित साधना) से जुड़े थे। इन्होंने मुख्य धाराओं के साथ मिलकर एक ऐसा वैचारिक माहौल बनाया जिसमें हर वर्ग के व्यक्ति के लिए भक्ति का कोई न कोई मार्ग उपलब्ध था।
- **आने वाले युगों के लिए मार्ग प्रशस्त करना:** इन छोटे कवियों के प्रयोगों और रचनाओं ने रीतिकाल और आधुनिक काल के रचनाकारों के लिए भाषा और शिल्प के कई नए रास्ते खोले।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो, किसी भी विशाल वृक्ष को खड़ा होने के लिए जैसे मुख्य तने के साथ-साथ छोटी शाखाओं और पत्तियों की भी जरूरत होती है, वैसे ही भक्तिकाल के महान पर्वतों जैसे कवियों को स्थापित करने और समाज तक पहुँचाने में इन गौण कवियों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है।

प्रश्न 31: रीतिकाल के उदय की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का वर्णन कीजिए।

हिंदी साहित्य के इतिहास में 'रीतिकाल' (संवत् 1700 से 1900) का समय बहुत ही उथल-पुथल, बदलाव और एक खास विलासिता से भरा दौर था। इस काल के उदय के पीछे तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियाँ मुख्य रूप से जिम्मेदार थीं, जिनका विवरण निम्नलिखित है:

- **राजनीतिक पृष्ठभूमि (मुगल साम्राज्य का वैभव और विलासिता):**

- इस काल तक आते-आते भारत में मुगल साम्राज्य अपनी पूरी ताकत और शान-शौकत के शिखर पर पहुँच चुका था, विशेषकर शाहजहाँ और औरंगजेब का शुरुआती दौर।
- राजा-महाराजा और सामंत (नवाब) युद्ध के मैदान से दूर महलों के भीतर ऐशो-आराम, शराब, संगीत और सुंदर नर्तकियों (विलासिता) के बीच डूब चुके थे।
- चूँकि राजा लोग कविता और कला के बड़े शौकीन थे और कवियों को आश्रय (पैसे और जागीर) देते थे, इसलिए कवियों को भी राजाओं की रुचि के अनुसार केवल शृंगार और प्रेम की कविताएँ लिखनी पड़ीं।
- **सामाजिक पृष्ठभूमि (विलासी और पतनशील समाज):**
 - समाज में सामंती व्यवस्था (Feudal System) पूरी तरह हावी थी। एक तरफ राजा और अमीर लोग पानी की तरह पैसा बहाते थे, तो दूसरी तरफ आम जनता गरीबी, शोषण और बेबसी का जीवन जी रही थी।
 - धर्म और नैतिकता का स्तर गिर चुका था। मंदिरों और मठों में भी राजाओं की देखा-देखी भोग-विलास और भ्रष्टाचार घुस आया था। समाज में स्त्री को केवल 'भोग की वस्तु' (मनोरंजन का साधन) मान लिया गया था, जिसके चलते साहित्य में नायिका-भेद और रूप-सौंदर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन बढ़ गया।
- **सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (दरबारी संस्कृति और लक्षण ग्रंथों की होड़):**
 - यह वह समय था जब संस्कृत के आचार्यों की तरह हिंदी में भी काव्य-शास्त्र के नियम (लक्षण) बनाने और राजाओं को खुश करने की होड़ लग गई थी।
 - कवियों के सामने यह साबित करने की चुनौती थी कि वे कविता के नियमों (अलंकार, रस, नायक-नायिका भेद) में कितने पारंगत हैं। इसलिए इस काल में 'लक्षण-ग्रंथों' की बाढ़ आ गई।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो, रीतिकाल का उदय किसी महान सामाजिक सुधार या आध्यात्मिक आंदोलन के रूप में नहीं हुआ था, बल्कि यह शांत और विलासी राजाओं के दरबारों में पलने वाली एक 'दरबारी संस्कृति' की उपज था। जहाँ भक्तिकाल का मुख्य स्वर 'भक्ति और लोक-कल्याण' था, वहीं रीतिकाल का मुख्य स्वर 'शृंगार और कला-प्रदर्शन' बन गया।

प्रश्न 32: रीतिकाल की प्रमुख धाराओं—रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त—का परिचय दीजिए और उनमें अंतर स्पष्ट कीजिए।

रीतिकाल (संवत् 1700 से 1900) हिंदी साहित्य का वह दौर है जहाँ कविता ने दरबारों का रुख किया और काव्य-शास्त्र (रस, अलंकार, नायक-भेद आदि) के नियम सबसे ऊपर हो गए। विद्वानों (विशेषकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल और डॉ. नगेंद्र) ने रीतिकाल की संपूर्ण काव्य-धारा को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा है:

1. रीतिबद्ध काव्यधारा:

- **परिचय:** इस धारा के कवि वे आचार्य कवि थे जिन्होंने काव्य-शास्त्र के नियमों (लक्षणों) को ध्यान में रखकर कविताएँ लिखीं। उन्होंने पहले कविता के नियम (लक्षण) समझाए और फिर उनके उदाहरण के रूप में अपनी कविता (लक्ष्य) प्रस्तुत की।
- **प्रमुख कवि:** केशवदास, चिंतामणि, मतिराम, देव, और भिखारीदास।
- **विशेषता:** इनमें मौलिकता से ज्यादा शास्त्रीय नियमों और पांडित्य-प्रदर्शन का जोर रहता था।

2. रीतिसिद्ध काव्यधारा:

- **परिचय:** इस धारा के कवियों ने औपचारिक रूप से कोई 'लक्षण-ग्रंथ' (काव्य-शास्त्र की किताबें) नहीं लिखे, लेकिन वे रीति के नियमों और काव्य-शास्त्र में पूरी तरह पारंगत (सिद्ध) थे। उन्होंने नियमों को रटने या सिखाने के बजाय अपनी रचनाओं में उनका सहज और स्वाभाविक प्रयोग किया।
 - **प्रमुख कवि:** बिहारी लाल (इनकी एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' इस धारा का सर्वोच्च ग्रंथ है), सेनापति।
 - **विशेषता:** इनमें गागर में सागर भरने की अद्भुत कला (दोहे के माध्यम से गहरी बात कहना) और शृंगार रस की प्रधानता मिलती है।
3. **रीतिमुक्त काव्यधारा:**
- **परिचय:** यह रीति-काल की सबसे विद्रोही और स्वतंत्र धारा है। इन कवियों ने काव्य-शास्त्र के किसी भी बंधे-बँधाए नियम, लक्षण या दरबार की सीमाओं को नहीं माना। उन्होंने अपनी स्वतंत्र प्रेम-भावना और हृदय की सच्ची पीड़ा को आधार बनाकर कविता की।
 - **प्रमुख कवि:** घनानंद, बोधा, आलम और ठाकुर।
 - **विशेषता:** इनमें प्रेम की पीड़ा (विरह), आत्म-समर्पण, और स्वच्छंदता का अत्यंत मार्मिक और सच्चा चित्रण मिलता है।

तीनों धाराओं की तुलना (मुख्य अंतर):

मापदंड / आधार	रीतिबद्ध धारा	रीतिसिद्ध धारा	रीतिमुक्त धारा
नियमों का पालन	इन्होंने कड़ाई से काव्य-शास्त्र के नियमों और लक्षण-ग्रंथों का पालन किया।	इन्होंने नियम तो नहीं लिखे, पर इनकी रचनाओं में रीति के नियम स्वतः सिद्ध रूप से मौजूद थे।	इन्होंने सभी शास्त्रीय नियमों और दरबारी बंधनों को पूरी तरह नकार दिया।
प्रेरणा का स्रोत	राजदरबारों में राजाओं को खुश करना और काव्य-शास्त्र पढ़ाना।	अपनी कला-कुशलता और लोक-अनुभव के आधार पर स्वतंत्र रचना करना।	हृदय की सच्ची प्रेम-वेदना, व्यक्तिगत प्रेम और स्वच्छंद भावनाएँ।
मौलिकता और भाव	इसमें चमत्कार, शब्द-डंबर और शिल्प का प्रदर्शन ज्यादा था।	इसमें कला की परिपक्वता और छोटे छंदों में बड़े अर्थ भरने की कला थी।	इसमें हृदय की सचाई, वियोग की गहराई और आत्मिक तड़प प्रधान थी।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो, **रीतिबद्ध** कवि नियमों के दायरे में बँधे शिक्षक की तरह थे, **रीतिसिद्ध** कवि नियमों का पालन करते हुए चतुर कलाकार थे, और **रीतिमुक्त** कवि सभी जंजीरों को तोड़कर बहने वाली प्रेम की स्वतंत्र धारा थे।

प्रश्न 33: रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि घनानंद के काव्य की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

हिंदी साहित्य के रीतिकाल की 'रीतिमुक्त धारा' के सिरमौर और सबसे प्रतिष्ठित कवि **घनानंद** (आनंदघन) माने जाते हैं। उनका काव्य रीतिकाल की बंधी-बँधाई दरबारी परंपरा और कृत्रिमता से पूरी तरह मुक्त, हृदय की सच्ची पीड़ा और स्वच्छंद प्रेम का अमर दस्तावेज है। उनकी काव्य-कला और विशेषताओं को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- **लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की ओर (सुजान प्रेम):** घनानंद अपनी प्रेमिका 'सुजान' (जो एक नर्तकी थी) से बेइंतिहा मोहब्बत करते थे। जब दरबार के षड्यंत्रों के कारण सुजान ने उन्हें छोड़ दिया, तब उनका यह सांसारिक प्रेम धीरे-धीरे भगवान कृष्ण के प्रति गहरी और आध्यात्मिक भक्ति में बदल गया। उनके काव्य में 'सुजान' शब्द दोनों अर्थों (प्रेमिका और कृष्ण) में प्रयुक्त हुआ है।
- **प्रेम की पीड़ा और वियोग (विरह की प्रधानता):** घनानंद के काव्य का प्राण 'विरह' (बिछोह) है। संयोग (मिलन) के क्षणों की तुलना में उनके यहाँ वियोग के चित्र अधिक गहरे और मर्मस्पर्शी हैं। उनका मानना था कि प्रेम में जितना अधिक दर्द और तड़प होगी, प्रेम उतना ही पवित्र होगा—*"प्रेम को पंथ कराल महा, तरवार की धार पे धावनो है।"*
- **लक्षण-ग्रंथों और रूढ़ियों का तिरस्कार:** रीतिमुक्त होने के नाते घनानंद ने आचार्य केशव या मतिराम की तरह राजाओं को खुश करने के लिए कोई 'लक्षण-ग्रंथ' नहीं लिखे और न ही नायिका-भेद के पुराने नियमों को रटा। उन्होंने वही लिखा जो उनके अपने दिल ने महसूस किया।
- **ब्रजभाषा पर असाधारण अधिकार (लाक्षणिक और व्यंजनाप्रधान भाषा):** घनानंद की ब्रजभाषा अत्यंत परिष्कृत, सजीव और प्रवाहमयी है। उन्होंने साधारण शब्दों में भी ऐसी लाक्षणिकता और व्यंजना शक्ति भरी है कि अर्थ की गहराई स्वतः बढ़ जाती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनकी भाषा के बारे में कहा था कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार घनानंद का था, वैसा किसी और का नहीं।
- **स्वच्छंद प्रेम और आत्म-समर्पण:** उनके काव्य में प्रेम का कोई कृत्रिम दिखावा नहीं है। वहाँ प्रेमी की पूर्ण उदासीनता, एकनिष्ठता और अपने प्रिय के प्रति बिना किसी स्वार्थ के खुद को मिटा देने की पराकाष्ठा दिखाई देती है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो घनानंद रीतिकाल के उन विरले कवियों में हैं जिन्होंने दरबार की झूठी और चमत्कारी चाटुकारिता से दूर रहकर अपने दिल के खून से कविता की रचना की। उनकी प्रेम की पीड़ा और भाषा की मिठास हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर है।

प्रश्न 34: रीतिकाल के अन्य प्रतिनिधि कवियों—बिहारी, मतिराम, पद्माकर और केशवदास—के साहित्यिक योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

रीतिकाल (संवत् 1700 से 1900) के इतिहास में घनानंद के अलावा कुछ ऐसे महान आचार्य और कवि हुए हैं जिन्होंने अपनी अनूठी रचनाओं से इस काल को समृद्ध बनाया। इन चार प्रमुख कवियों का साहित्यिक योगदान इस प्रकार है:

- **1. महाकवि बिहारी (रीतिसिद्ध धारा के सिरमौर):**
 - **गागर में सागर भरना:** बिहारी ने अपने जीवन में केवल एक ही ग्रंथ लिखा—**'बिहारी सतसई'**, जिसमें लगभग 700 दोहे हैं। उनके दोहे बहुत छोटे होते हैं, लेकिन उनमें अर्थ की गहराई का अथाह सागर होता है (जैसे— *"सतसैया के दोहरे, जो नावक के तीर, देखन में छोटन लगै, घाव करै गम्भीर"*)।

- **शृंगार और कला का अद्भुत मेल:** उन्होंने नीति, भक्ति और ज्योतिष का ज्ञान देते हुए मुख्य रूप से शृंगार रस के संयोग और वियोग पक्षों का अत्यंत चमत्कारी चित्रण किया है।
- **2. आचार्य केशवदास (रीतिबद्ध धारा के प्रवर्तक):**
 - **कठिन प्रेत:** केशवदास ने सबसे पहले संस्कृत के काव्य-शास्त्र के नियमों को हिंदी में पूरी कड़ाई से लागू किया। उनकी रचना '**रसिकप्रिया**' और '**कविप्रिया**' बहुत प्रसिद्ध हैं।
 - **कठिन काव्य का प्रेत:** आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उन्हें 'कठिन काव्य का प्रेत' कहा है, क्योंकि उनकी कविताओं में भावों की सहजता से ज्यादा पांडित्य-प्रदर्शन और कठिन शब्दों का जाल दिखाई देता है। उनका महाकाव्य '**रामचंद्रिका**' संवाद-योजना के लिए विशेष रूप से जाना जाता है।
- **3. मतिराम (सरल और सुमधुर शृंगार के कवि):**
 - **सहज और प्रवाहमयी भाषा:** मतिराम रीतिबद्ध धारा के उन कवियों में हैं जिनकी भाषा में केशवदास जैसा कठिन पाण्डित्य नहीं, बल्कि अत्यंत सहजता, मिठास और प्रवाह है।
 - **प्रमुख रचनाएँ:** '**रसराज**' और '**ललित ललाम**' उनके ऐसे ग्रंथ हैं जो शृंगार रस और अलंकारों के निरूपण के लिए आज भी आदर्श माने जाते हैं। उनके दोहे बहुत ही रसपूर्ण और लोकप्रिय हैं।
- **4. पद्माकर भट्ट (अंतिम शृंगारी और ओजस्वी कवि):**
 - **शृंगार और वीरता का संगम:** पद्माकर रीतिकाल के अंतिम महान कवियों में गिने जाते हैं। उनके काव्य में जहाँ एक तरफ होली, वसंत और शृंगार रस की मीठी फुहारें हैं, वहीं दूसरी तरफ राजाओं की वीरता का ओजस्वी वर्णन भी मिलता है।
 - **मधुर पदावली:** उनकी रचनाओं जैसे '**जगद्गिनोद**' और '**गंगालाहरी**' में ब्रजभाषा का अत्यंत सुंदर, कोमल और संगीतयुक्त रूप देखने को मिलता है। शब्दों की लय और नाद-सौंदर्य उनकी सबसे बड़ी ताकत थी।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो, केशव के पांडित्य, बिहारी की चमत्कारिक संक्षिप्तता, मतिराम की सहज मिठास और पद्माकर की सांगीतिकता ने मिलकर रीतिकाल के काव्य-संसार को अत्यंत विविधता और भव्यता प्रदान की।

प्रश्न 35: आधुनिक काल के प्रवेश द्वार के रूप में 'भारतेन्दु युग' का क्या महत्व है?

हिंदी साहित्य के इतिहास में 'भारतेन्दु युग' (संवत् 1925 से 1950 / सन् 1850 से 1900) को आधुनिक काल का प्रवेश द्वार कहा जाता है। यह वह महत्वपूर्ण कालखंड था जब हिंदी साहित्य सदियों पुरानी रूढ़ियों, दरबारी विलासिता (रीतिकाल) और ब्रजभाषा के संकुचित दायरे को छोड़कर सीधे जनजीवन, राष्ट्रप्रेम और गद्य की नई विधाओं से जुड़ा। आधुनिकता के इस संक्रमण काल का महत्व निम्नलिखित बिंदुओं से स्पष्ट होता है:

- **गद्य विधाओं का वास्तविक विकास:** रीतिकाल तक हिंदी साहित्य का मतलब केवल 'कविता' (पद्य) हुआ करता था। भारतेन्दु युग में उपन्यास, नाटक, कहानी, निबंध और आलोचना जैसी आधुनिक गद्य विधाओं का भारी पैमाने पर विकास हुआ। भारतेन्दु हरिश्चंद्र को हिंदी गद्य का जनक माना जाता है।
- **"ब्रजभाषा" से "खड़ीबोली" की ओर संक्रमण:** इस काल की यह सबसे बड़ी विशेषता थी कि कवियों ने पद्य के लिए जहाँ ब्रजभाषा का मोह नहीं छोड़ा, वहीं गद्य के लिए 'खड़ीबोली हिंदी' को पूरी तरह अपना लिया। यह भाषा के आधुनिकीकरण की पहली बड़ी सीढ़ी थी।

- **साहित्य का दरबारी दायरे से निकलकर 'जनता' से जुड़ना:** रीतिकाल के कवि राजाओं की प्रशंसा करते थे, लेकिन भारतेंदु और उनके मंडल के लेखकों (जैसे बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र) ने साहित्य का रुख आम जनता की समस्याओं, गरीबी, अज्ञानता और देश की दशा की ओर मोड़ दिया।
- **राष्ट्रीय चेतना और स्वदेश प्रेम की शुरुआत:** अंग्रेजों की गुलामी और देश की आर्थिक लूट को पहली बार साहित्य का विषय बनाया गया। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने गर्व से कहा— *"निज भाषा उन्नति है, सब उन्नति को मूल"*—जो इस युग का सबसे बड़ा नारा बन गया।
- **सामाजिक कुरीतियों और पाखंडों पर प्रहार:** समाज में फैले बाल-विवाह, छुआछूत, धार्मिक पाखंड और अंधविश्वासों के खिलाफ इस काल के लेखकों ने नाटकों और निबंधों के माध्यम से तीखा व्यंग्य और जन-जागरण का अभियान चलाया।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो, भारतेंदु युग वह महान सेतु है जिसने हिंदी साहित्य को मध्यकालीन सामंती जंजीरों से मुक्त कर आधुनिक युग, लोक-कल्याण और राष्ट्रवाद के खुले आसमान में ला खड़ा किया।

प्रश्न 36: द्विवेदी युग की साहित्यिक और सांस्कृतिक विशेषताओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में भारतेंदु युग के ठीक बाद के कालखंड (सन् 1900 से 1920) को **'द्विवेदी युग'** कहा जाता है। इसका नामकरण महान साहित्यकार और संपादक **आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी** के नाम पर हुआ, जिन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिंदी भाषा और साहित्य को एक नई दिशा और अनुशासन दिया। इस युग की प्रमुख साहित्यिक और सांस्कृतिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- **खड़ीबोली हिंदी का परिष्कार और व्याकरणिक स्थिरता:** द्विवेदी युग की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि इसने गद्य के साथ-साथ 'पद्य' (कविता) की भाषा के रूप में भी ब्रजभाषा को छोड़कर **खड़ीबोली** को पूरी तरह प्रतिष्ठित किया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने व्याकरण की अशुद्धियों को दूर कर खड़ीबोली को एक मानक, साफ-सुथरी और परिष्कृत भाषा बनाया।
- **इतिवृत्तात्मकता (वर्णनात्मकता और उपदेशात्मकता):** इस काल की कविताओं में केवल कल्पना की उड़ान या भावुकता के बजाय कथात्मकता, घटनाओं का वर्णन और समाज को सुधारने वाले सीधे उपदेश देने की प्रवृत्ति प्रधान थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने द्विवेदी युग की कविता की इस मुख्य विशेषता को **'इतिवृत्तात्मकता'** कहा है।
- **राष्ट्रीय चेतना और स्वदेश-प्रेम:** इस काल के कवियों ने देश की गुलामी, सांस्कृतिक गौरव और स्वतंत्रता की भावना को अपनी कविताओं का केंद्र बनाया। मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'भारत-भारती' ने उस समय के युवाओं में देशभक्ति की ऐसी अलख जगाई कि उन्हें 'राष्ट्रकवि' की उपाधि मिली।
- **नैतिकता, आदर्शवाद और समाज-सुधार:** द्विवेदी युग का साहित्य सुधारवादी और आदर्शवादी था। इस काल में बाल-विवाह, छुआछूत, परदा प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया गया और सत्य, अहिंसा, कर्तव्य-पालन और उच्च मानवीय मूल्यों को बढ़ावा दिया गया।
- **प्रबंध-काव्यों की रचना:** इस काल के कवियों ने केवल छोटे-छोटे मुक्तक पद ही नहीं लिखे, बल्कि पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओं को आधार बनाकर बड़े-बड़े **प्रबंध-काव्य और महाकाव्य** रचे। जैसे—मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का 'प्रियप्रवास'।
- **उपेक्षित पात्रों को न्याय (नारी और शोषित वर्ग):** इस युग की एक बड़ी सांस्कृतिक विशेषता यह थी कि पौराणिक कथाओं के उन पात्रों (विशेषकर महिलाओं) को मुख्यधारा में लाया गया जिनकी उपेक्षा

हुई थी। जैसे—मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में उर्मिला के विरह को और 'जयद्रथ वध' में आमजन के दर्द को बहुत प्रमुखता से उभारा।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो, द्विवेदी युग हिंदी साहित्य का वह अनुशासन-पर्व था जिसने भाषा को व्याकरण के नियमों में बांधकर और राष्ट्रप्रेम तथा नैतिकता का पाठ पढ़ाकर आने वाली 'छायावाद' जैसी महान काव्य-धारा के लिए एक मजबूत और उर्वर जमीन तैयार की।

प्रश्न 37: छायावाद की प्रमुख विशेषताओं (प्रवृत्तियों) का विस्तार से मूल्यांकन कीजिए।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में द्विवेदी युग की उपदेशात्मकता और इतिवृत्तात्मकता के खिलाफ एक महान साहित्यिक और भावनात्मक विद्रोह के रूप में 'छायावाद' (लगभग सन् 1918 से 1936 ई.) का उदय हुआ। इसे हिंदी कविता का स्वर्णकाल भी कहा जाता है। छायावाद के चार प्रमुख स्तंभ—**जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा**—माने जाते हैं। छायावाद की प्रमुख विशेषताओं और प्रवृत्तियों का मूल्यांकन निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से किया जा सकता है:

- **व्यक्तिवादी स्वाधीनता और वैयक्तिक प्रेम (व्यक्तिवाद की प्रधानता):**

द्विवेदी युग की तरह छायावाद में समाज या उपदेश को मुख्य नहीं रखा गया, बल्कि कवि के अपने निजी हृदय की भावनाएँ, उसका व्यक्तिगत सुख-दुख और आंतरिक स्वतंत्रता कविता के केंद्र में आई। प्रेम का यहाँ अत्यंत सूक्ष्म, कोमल और उदात्त रूप देखने को मिलता है, जो दरबारी शृंगार की स्थूलता से पूरी तरह मुक्त था।

- **प्रकृति का मानवीकरण (रहस्यवाद और प्रकृति चित्रण):**

छायावाद की सबसे बड़ी पहचान उसका प्रकृति के प्रति अगाध प्रेम है। कवियों ने प्रकृति को केवल सजावट की वस्तु न मानकर उसमें प्राण डाले और उसका 'मानवीकरण' किया (यानी प्रकृति इंसानों की तरह हँसती, रोती और संदेश देती है)। सुमित्रानंदन पंत को 'प्रकृति का सुकुमार कवि' इसी कारण कहा जाता है।

- **रहस्यवादी भावना (अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा):**

छायावादी कवियों की आँखें हमेशा किसी अज्ञात, असीम और अलौकिक शक्ति (परमात्मा) को खोजने में लगी रहती थीं। वे इस संसार के कण-कण में उसी अज्ञात प्रीतम की छाया देखते थे (यही कारण है कि इसे 'छायावाद' कहा गया)। महादेवी वर्मा के काव्य में यह रहस्यवाद और परमात्मा के प्रति विरह की पीड़ा पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है।

- **वेदना और करुणा की प्रधानता:**

छायावादी काव्य में आनंद और उल्लास की तुलना में हृदय की गहरी पीड़ा, करुणा और विषाद का स्वर अधिक मुखर है। महादेवी वर्मा ने तो स्पष्ट ही कहा है— *"लगा जो टूट ने मोहन क्षितिज का प्रेम बंधन भी, सजे किस भाँति से ये दीप, दो आंसू ढरक आए।"* उनके यहाँ दर्द ही कविता की प्रेरणा बनता है।

- **कल्पना की प्रधानता और लाक्षणिक/प्रतीकात्मक भाषा:**

इस काल की कविता में स्थूल सत्यों के बजाय सूक्ष्म कल्पना की उड़ान और प्रतीकों का बहुतायत से प्रयोग हुआ। सीधी बात कहने के बजाय प्रतीकों, बिंबों और मानवीकरण के माध्यम से बात को कलात्मक ढंग से कहा गया।

- **खड़ीबोली का अत्यंत कोमल, मधुर और परिष्कृत रूप:**

द्विवेदी युग की खड़ीबोली जो थोड़ी रुखी और उपदेशात्मक थी, छायावाद में आकर अत्यंत संगीतयुक्त, कोमल, नाद-सौंदर्य से परिपूर्ण और प्रवाहमयी बन गई। प्रसाद, पंत और निराला ने इसे संस्कृतनिष्ठ शब्दावली और संगीत के जादू से सजा दिया।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो, छायावाद केवल कुछ कविताओं का संग्रह नहीं है, बल्कि यह मनुष्य की आत्मा, भावनाओं, प्रकृति और असीम ब्रह्मांड के साथ जुड़ने का एक अत्यंत सुंदर, दार्शनिक और कलात्मक आंदोलन था। इसने हिंदी कविता को विश्व-स्तर की काव्य-गरिमा प्रदान की।

प्रश्न 38: छायावाद के चार प्रमुख स्तंभों—जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा—के साहित्यिक योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

हिंदी साहित्य में 'छायावाद' (सन् 1918 से 1936 ई.) के उत्थान और उसकी सर्वोच्च प्रतिष्ठा का पूरा श्रेय इसके चार प्रमुख स्तंभों को जाता है। इन चारों महान रचनाकारों ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा से हिंदी कविता को भाव, भाषा और शिल्प के स्तर पर विश्व-स्तरीय गरिमा प्रदान की। इनका साहित्यिक योगदान निम्नलिखित है:

- **1. महाकवि जयशंकर प्रसाद (छायावाद के जनक और दार्शनिक):**
 - **प्रबंध-रचना और ऐतिहासिक नाटक:** प्रसाद जी ने छायावाद की शुरुआत की और इसके वैचारिक आधार को मजबूत किया। उनकी प्रसिद्ध रचना '**कामायनी**' (महाकाव्य) मानव चेतना, श्रद्धा और मन के विकास का एक महान दार्शनिक ग्रंथ है। इसके अलावा '**आँसू**' उनका अत्यंत मार्मिक विरह-काव्य है।
 - **विशेषता:** उनके काव्य में प्रेम, सौंदर्य, उदात्त कल्पना और भारतीय संस्कृति का अत्यंत भव्य और कोमल रूप देखने को मिलता है।
- **2. सुमित्रानंदन पंत (प्रकृति के सुकुमार कवि):**
 - **प्रकृति का मानवीकरण और संगीतात्मकता:** पंत जी को 'प्रकृति का सुकुमार कवि' कहा जाता है। उनकी आँखें प्रकृति के कण-कण में जादू और रहस्य देखती थीं। '**पल्लव**', '**गुंजन**' और '**युगांत**' उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।
 - **विशेषता:** उनकी भाषा में शब्दों का ऐसा जादू और नाद-सौंदर्य है कि कविता पढ़ते ही संगीत का आभास होने लगता है। बाद में वे अरविंद दर्शन और प्रगतिवाद से भी जुड़े।
- **3. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (विद्रोही और महाप्राण कवि):**
 - **मुक्त छंद के प्रवर्तक:** निराला जी छायावाद के सबसे ओजस्वी और विद्रोही कवि थे। उन्होंने कविता को पुरानी और बंधी-बँधाई छंदों की बेड़ियों से मुक्त करके '**मुक्त छंद**' (रबर छंद) की नींव रखी। '**जुही की कली**', '**राम की शक्तिपूजा**' और '**सरोज स्मृति**' (हिंदी का सबसे श्रेष्ठ शोक-गीत) उनकी अमर रचनाएँ हैं।
 - **विशेषता:** उनके काव्य में जहाँ एक तरफ कोमल प्रेम और दार्शनिक गहराई है, वहीं दूसरी तरफ शोषितों के प्रति करुणा और अन्याय के खिलाफ भयंकर विद्रोह का स्वर भी है।
- **4. महादेवी वर्मा (आधुनिक मीरा और वेदना की कवयित्री):**
 - **रहस्यवाद और विरह की पराकाष्ठा:** महादेवी वर्मा के काव्य का मुख्य स्वर 'करुणा' और 'रहस्यवाद' है। उन्हें '**आधुनिक युग की मीरा**' कहा जाता है क्योंकि उनकी भक्ति और विरह में मीरा जैसी ही तड़प और एकनिष्ठता दिखाई देती है। '**नीहार**', '**रश्मि**', '**नीरजा**' और '**सांध्यगीत**' उनके प्रसिद्ध संग्रह हैं।
 - **विशेषता:** उनके गीतों में दर्द और आँसुओं को एक ऐसा सुंदर और पवित्र रूप दिया गया है, जो पाठक के मन को भीतर तक भिगो देता है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो प्रसाद की दार्शनिक गहराई, पंत का प्रकृति प्रेम, निराला का क्रांतिकारी ओज और महादेवी की करुणा—इन चारों की त्रिवेणी ने ही मिलकर 'छायावाद' को हिंदी साहित्य का सबसे गौरवशाली और स्वर्णिम काल बनाया है।

प्रश्न 39: 'कामायनी' के महाकाव्यत्व पर विचार कीजिए।

'कामायनी' एक आधुनिक रचना है, अतः इसे प्राचीन महाकाव्य के शास्त्रीय मानदंडों पर मापना उचित नहीं है। इसके महाकाव्यत्व का निर्णय इसमें निहित 'उदात्तता' (महानता या भव्यता) के आधार पर किया जा सकता है, जिसके प्रमुख बिंदु निम्नलिखित हैं:

- **उदात्त कथानक:** इसका कथानक स्वार्थपूर्ण अहंकार के पराभव, पुरुष और नारी के मिलन, मानवीय संस्कृति के विकास और अंततः समरसता तथा आनंद की उपलब्धि का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण करता है।
- **उदात्त उद्देश्य:** इसका मूल उद्देश्य इच्छा, क्रिया और ज्ञान के सामंजस्य द्वारा 'समरसता' की उपलब्धि और उसके फलस्वरूप 'आनंद' की सिद्धि करना है। यह आधुनिक मानव की सबसे बड़ी विडंबना (ज्ञान और क्रिया का अलग-अलग होना) का समाधान प्रस्तुत करता है।
- **उदात्त भाव:** कामायनी की भाव-योजना मनुष्य की चेतना को उदार बनाती है और उसे अपने समय के प्रति संवेदनशील करती है।
- **उदात्त चरित्र:** इसकी केंद्रीय पात्र 'श्रद्धा' महाकाव्य के एकदम अनुरूप है, जो दयामयी, ममतामयी और समर्पण से युक्त भारतीय नारी का आदर्श प्रतिनिधित्व करती है।
- **उदात्त शैली:** इसकी भाषा-शैली में अद्भुत ऐश्वर्य, अलंकार, लक्षणा और व्यंजना की समर्थ योजना है।
- **निष्कर्ष:** यद्यपि इसमें शास्त्रीय लक्षणों का पूर्ण निर्वाह नहीं है, फिर भी अपने विराट कथ्य और चिंतन की गहराई के कारण इसे 'रामचरितमानस' के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण महाकाव्य माना जाता है।

प्रश्न 40: " 'कामायनी' उज्ज्वल चेतना का सुंदर इतिहास है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं? स्पष्ट कीजिए।

जयशंकर प्रसाद रचित 'कामायनी' मनु की कथा के माध्यम से मानव मन और मानवीय ऐतिहासिक विकास की 'उज्ज्वल चेतना' प्रस्तुत करती है, जिसे निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- **समरसता की चेतना:** यह उज्ज्वल चेतना मूलतः 'समरसता' की चेतना है, जो 'चिंता' सर्ग से प्रारंभ होकर 'आनंद' सर्ग तक जाती है। प्रसाद ने इसे उज्ज्वल इसलिए कहा है क्योंकि यह संकीर्ण नहीं बल्कि अत्यंत व्यापक है।
- **हृदय और बुद्धि का समन्वय:** जब मनु हृदय रूपी भावनाओं (श्रद्धा) से अलग होकर केवल बुद्धि (इड़ा) के पास जाते हैं, तो संघर्ष, तनाव और विसंगति पैदा होती है। किंतु जब वह बुद्धि और हृदय दोनों का साथ प्राप्त करते हैं, तब समरसता प्राप्त होती है।
- **इच्छा, ज्ञान और क्रिया का समन्वय:** यह चेतना मानव जीवन में इच्छा, ज्ञान और क्रिया के बीच समन्वय स्थापित करती है, क्योंकि प्रसाद जी के अनुसार इनकी विषमता ही जीवन में विसंगति का मुख्य कारण है।
- **प्रकृति और पर्यावरण संतुलन:** प्रसाद की यह दृष्टि मानव-पशु अधिकारों और पर्यावरणीय संतुलन में भी समन्वय स्थापित करती है। इसमें श्रद्धा द्वारा मनु को प्रकृति के अति-दोहन के प्रति सचेत किया गया है।

- **वर्ग-विषमता पर प्रहार:** प्रसाद जी इस उज्ज्वल चेतना के माध्यम से समाज में फैली वर्ग-विषमता पर भी चोट करते हैं और मानते हैं कि वर्गों की खाई (वर्ग समन्वय का अभाव) समाज में भयानक संघर्ष को जन्म दे सकती है।
- **निष्कर्ष:** इस प्रकार, कामायनी मानव-मानव, मानव-प्रकृति और मानव मन के विभिन्न भावों के बीच समन्वय स्थापित करने वाली समरसतावादी उज्ज्वल चेतना का एक सुंदर इतिहास बन गई है।

प्रश्न 41: छायावादोत्तर हिंदी कविता की प्रमुख धाराओं—प्रगतिवाद और प्रयोगवाद—का परिचय दीजिए और उनके मुख्य अंतरों को स्पष्ट कीजिए।

सन् 1936 के आसपास जब 'छायावाद' का दौर अपनी चरम सीमा से नीचे उतरने लगा, तब हिंदी कविता ने एक नया मोड़ लिया। छायावाद के बाद की कविता मुख्य रूप से दो शक्तिशाली धाराओं में बँट गई—**प्रगतिवाद** और **प्रयोगवाद**। इन दोनों धाराओं ने साहित्य को कल्पना के आसमान से उतारकर जमीन और यथार्थ के करीब ला खड़ा किया।

1. प्रगतिवाद (लगभग सन् 1936 से 1943 ई.)

- **परिचय:** प्रगतिवाद, मार्क्सवाद (साम्यवाद) और भौतिकवादी दर्शन से प्रभावित काव्यधारा है। इसमें कला को केवल मनोरंजन या व्यक्तिगत प्रेम का साधन न मानकर '**समाज सुधार और क्रांति का हथियार**' माना गया।
- **प्रमुख कवि:** नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री, केदारनाथ अग्रवाल, और रामधारी सिंह 'दिनकर' (प्रगतिशील चेतना के साथ)।
- **प्रमुख विशेषताएँ:**
 - **शोषितों और मजदूरों के प्रति सहानुभूति:** राजा-महलों के बजाय किसानों, मजदूरों, गरीबों और शोषित वर्ग के संघर्ष को कविता का केंद्र बनाया गया (जैसे नागार्जुन की कविताएँ)।
 - **धार्मिक पाखंड और पूँजीवाद का विरोध:** समाज में फैली असमानता, गरीबी और धर्म की आड़ में होने वाले शोषण के खिलाफ खुली बगावत और क्रांति का आह्वान।
 - **स्पष्ट और सीधी भाषा:** इसमें छायावाद जैसी जटिल या अमूर्त कल्पना के बजाय बहुत ही सीधी, खरी और जनसामान्य की भाषा का प्रयोग किया गया।

2. प्रयोगवाद (लगभग सन् 1943 से 1953 ई.)

- **परिचय:** प्रयोगवाद की शुरुआत सन् 1943 में अज्ञेय द्वारा संपादित '**तार सप्तक**' के प्रकाशन से मानी जाती है। यह धारा समाज-सुधार या राजनीति से ज्यादा '**व्यक्ति की स्वतंत्रता, नवीनता और शिल्प (काव्य-रूप)**' के प्रयोगों पर जोर देती थी।
- **प्रमुख कवि:** अज्ञेय (सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन), मुक्तिबोध (शुरुआती दौर), गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती और भारत भूषण अग्रवाल।
- **प्रमुख विशेषताएँ:**
 - **नये प्रतीक और नए बिंब:** पुरानी घिसी-पिटी उपमाओं और प्रतीकों को नकार कर आधुनिक जीवन, मशीनरी और रोजमर्रा की चीजों से नए प्रतीक खोजे गए।
 - **कुंठा, अकेलेपन और बौद्धिकता का चित्रण:** आधुनिक महानगरों के इंसान की अकेली जिंदगी, मानसिक तनाव, कुंठा और बौद्धिक जटिलताओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया।
 - **शिल्पगत प्रयोग:** कविता की लय, छंद और भाषा में लगातार नए-नए प्रयोग करना ही इस धारा का मुख्य लक्ष्य था।

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में मुख्य अंतर:

मापदंड / आधार	प्रगतिवाद	प्रयोगवाद
मुख्य प्रेरणा या दर्शन	मार्क्सवाद / साम्यवाद (सामूहिक समाज और क्रांति)।	अस्तित्ववाद / व्यक्तिवाद (व्यक्ति की स्वतंत्रता और मनोविज्ञान)।
कविता का केंद्र	समाज, वर्ग-संघर्ष, किसान, मजदूर और आर्थिक असमानता।	अकेला व्यक्ति, उसकी कुंठाएँ, आंतरिक संघर्ष और बौद्धिकता।
उद्देश्य	समाज बदलना, क्रांति लाना और शोषितों को न्याय दिलाना।	काव्य-शिल्प में नए प्रयोग करना और अभिव्यक्ति के नए रास्ते खोजना।
दृष्टिकोण	यह समाज-मुखी (बाहरी दुनिया पर केंद्रित) था।	यह व्यक्ति-मुखी (मन के भीतर की दुनिया पर केंद्रित) था।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो **प्रगतिवाद** ने कविता को समाज की हकीकत और मजदूरों की आवाज से जोड़ा, जबकि **प्रयोगवाद** ने कविता को नए तेवर, नई भाषा और आधुनिक मनुष्य की मानसिक जटिलताओं को टटोलने की एक नई दृष्टि दी।

प्रश्न 42: नई कविता की प्रमुख विशेषताओं और प्रवृत्तियों का विस्तार से मूल्यांकन कीजिए।

सन् 1950 के बाद (विशेषकर 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के साथ) हिंदी कविता ने 'प्रयोगवाद' के दायरे से बाहर निकलकर जिस नए और परिपक्व रूप को अपनाया, उसे '**नई कविता**' के नाम से जाना जाता है। नई कविता प्रयोगवाद का ही अगला और विकसित चरण है, लेकिन इसमें केवल प्रयोगों की कलाबाजी के बजाय जीवन के यथार्थ और आधुनिक मनुष्य की अनुभूतियों को प्रमुखता दी गई। इसकी प्रमुख विशेषताओं और प्रवृत्तियों का मूल्यांकन निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से किया जा सकता है:

- **जीवन के प्रति आस्तिक और यथार्थवादी दृष्टिकोण:** प्रयोगवाद के दौर में जहाँ निराशा, कुंठा और बौद्धिक जटिलताएँ बहुत अधिक थीं, वहीं 'नई कविता' के कवियों ने जीवन से भागने के बजाय उसके हर रूप (चाहे वह सुंदर हो या बदसूरत) को पूरी यथार्थता के साथ स्वीकार किया। इसमें पलायन के लिए कोई जगह नहीं थी।
- **लघुमानव (सामान्य इंसान) की प्रतिष्ठा:** नई कविता ने राजा-महाराजाओं, महापुरुषों या अति-मानवीय पात्रों को छोड़कर आम जिंदगी जीने वाले 'लघुमानव' (एक साधारण इंसान, क्लर्क, मजदूर या सामान्य नागरिक) के संघर्ष, उसकी छोटी-छोटी खुशियों और दुखों को अपनी कविता का मुख्य नायक बनाया।
- **अनुभव की प्रामाणिकता और सच्चाई:** नई कविता का यह बहुत बड़ा सिद्धांत था कि कवि जो भी लिखे, वह केवल किताबी कल्पना या उड़ाऊ बातें न हों, बल्कि उसके अपने जीवन के 'अनुभव की प्रामाणिकता' (सच्चा अनुभव) पर आधारित हो। मुक्तिबोध और शमशेर बहादुर सिंह इसके सबसे बड़े उदाहरण हैं।

- **बोध और अभिव्यक्ति के नए प्रयोग:** इस काल में भाषा, छंद, प्रतीक और बिंबों के क्षेत्र में क्रांतिकारी प्रयोग हुए। पुरानी घिसी-पिटी उपमाओं (जैसे चंद्रमा सा मुखड़ा) को पूरी तरह नकार कर आधुनिक जीवन, विज्ञान और यंत्र-युग के नए बिंबों और प्रतीकों का प्रयोग किया गया।
- **आधुनिक युग का संत्रास, अकेलापन और विडंबना:** औद्योगीकरण और महानगरों की संस्कृति ने इंसान को अकेला कर दिया है। नई कविता ने इस आधुनिक संत्रास (अजीब सा डर), अकेलेपन, घुटन और मानवीय रिश्तों में आती दरार का बहुत ही सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।
- **व्यंग्य और बौद्धिकता की प्रधानता:** इस कविता में भावुकता के मुकाबले बौद्धिक चेतना ज्यादा तेज है। समाज की राजनीति, भ्रष्टाचार, पाखंड और खोखलेपन पर तीखा कटाक्ष और व्यंग्य करना नई कविता का एक प्रमुख हथियार रहा है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो '**नई कविता**' केवल कविता लिखने का एक तरीका भर नहीं है, बल्कि यह आधुनिक भारतीय समाज और मनुष्य के भीतर झाँकने का एक नया आईना है। इसने कविता को राजाओं के दरबार और अमूल्य कल्पनाओं के महलों से निकालकर आम इंसान की धरती पर ला खड़ा किया।

प्रश्न 43: साठोत्तरी कविता और नई कविता में क्या अंतर है? साठोत्तरी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।

सन् 1960 के बाद (यानी साठ के दशक के आसपास) हिंदी कविता में जो नया मोड़ आया, उसे '**साठोत्तरी कविता**' कहा जाता है। यह 'नई कविता' का ही अगला पड़ाव था, लेकिन इसमें मोहभंग, आक्रोश और सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के प्रति तीव्र असंतोष का स्वर बहुत अधिक मुखर हो गया था।

नई कविता और साठोत्तरी कविता में मुख्य अंतर:

मापदंड / आधार	नई कविता (सन् 1950-1960)	साठोत्तरी कविता (सन् 1960 के बाद)
मुख्य स्वर एवं दृष्टिकोण	इसमें जीवन के प्रति एक प्रकार की यथार्थवादी स्वीकृति, बौद्धिक जिज्ञासा और नयापन तलाशने की छटपटाहट थी।	इसमें स्वतंत्रता के बाद के मोहभंग, राजनीति से निराशा, आक्रोश, विसंगति और व्यवस्था के प्रति तीखा क्षोभ था।
मानव का स्वरूप	इसमें साधारण इंसान को 'लघुमानव' के रूप में उसकी अपनी व्यक्तिगत समस्याओं के साथ देखा गया।	इसमें मनुष्य व्यवस्था की चक्की में पिसता हुआ एक ऐसा 'असहाय प्राणी' बन गया जो बेबस और लाचार है।
भाषा और शिल्प	इसमें भाषा के नए स्तर, बौद्धिक प्रतीक और चुस्त शिल्प पर बहुत जोर दिया गया।	इसमें शिल्प का मोह छूट गया और भाषा बहुत ही सीधी, तीखी, आक्रामक और बोलचाल के करीब हो गई।

मापदंड / आधार	नई कविता (सन् 1950-1960)	साठोत्तरी कविता (सन् 1960 के बाद)
विषय-वस्तु	मुख्य रूप से व्यक्तिगत अनुभूति, अकेलापन, संत्रास और आधुनिकता के प्रभाव।	भूख, गरीबी, भ्रष्टाचार, राजनीतिक धोखाधड़ी, नैतिक पतन और राष्ट्रीय संकट।

साठोत्तरी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ:

- **आजादी के बाद का मोहभंग और आक्रोश:** देश को आजाद हुए लंबा समय बीत चुका था, लेकिन आम जनता की गरीबी, बेरोजगारी और शोषण में कोई फर्क नहीं आया था। राजनेताओं और शासन व्यवस्था के इस खोखलेपन ने कवियों के भीतर भारी गुस्सा और 'मोहभंग' पैदा किया।
- **व्यवस्था के खिलाफ तीखा व्यंग्य और विरोध:** साठोत्तरी कवियों (जैसे धूमिल, लीलाधर जगूड़ी आदि) ने देश की राजनीति, प्रशासनिक भ्रष्टाचार और पाखंडी व्यवस्था पर बहुत ही कड़े और चोट करने वाले व्यंग्य लिखे।
- **भूख, नंगई और यथार्थ का आक्रामक चित्रण:** इस कविता में छायावाद या नई कविता की कोमलता और सुंदर कल्पनाओं के लिए कोई जगह नहीं थी। वहाँ समाज की नंगी सच्चाई, भूख, फुटपाथ की जिंदगी और संघर्ष को बिल्कुल वैसे ही परोसा गया जैसी वह थी।
- **असंगति, असुरक्षा और अकेलापन:** आधुनिक महानगरीय जीवन में इंसान मशीन का पुर्जा बनकर रह गया है। उसके जीवन की कोई दिशा नहीं बची है, जिसके कारण उसके भीतर एक गहरा खालीपन, असुरक्षा और मानसिक घुटन पैदा हुई।
- **अस्मिता की खोज और विद्रोह:** इस दौर की कविता में दलित, शोषित और उपेक्षित वर्गों ने अपनी पहचान (अस्मिता) और अधिकारों के लिए मुखर होकर आवाज उठानी शुरू कर दी थी, जिससे कविता का दायरा और अधिक विस्तृत और लोकतांत्रिक हो गया।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो **नई कविता** जहाँ आधुनिक जीवन की जटिलताओं और बौद्धिक संत्रास को टटोल रही थी, वहीं **साठोत्तरी कविता** ने व्यवस्था की सड़न के खिलाफ एक खुली और आक्रामक बगावत का झंडा उठा लिया।

प्रश्न 44: समकालीन हिंदी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों और विशेषताओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।

सन् 1970 के दशक के बाद से लेकर आज तक की हिंदी कविता को '**समकालीन कविता**' के रूप में जाना जाता है। यह कविता साठोत्तरी कविता के गुस्से और मोहभंग से आगे बढ़कर सीधे हमारे वर्तमान समय, जीवन की जटिलताओं, संघर्षों और मानवीय सरोकारों से गहराई से जुड़ती है। समकालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- **यथार्थ के प्रति सरोकार और जीवन की वास्तविक धड़कन:** समकालीन कविता में अमूर्त कल्पनाओं, वादों या अकादमिक जटिलताओं के लिए कोई स्थान नहीं है। यह सीधे खेत-खलिहान, कारखानों, सड़कों, बाजारों और आम आदमी के दैनिक जीवन के संघर्षों की सच्ची तस्वीर पेश करती है।
- **आम आदमी और 'स्त्री-दलित विमर्श' की मुखरता:** इस दौर की कविता केवल सामान्य 'लघुमानव' तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसमें समाज के सबसे हाशिए पर खड़े लोगों—जैसे दलितों, शोषितों,

मजदूरों और विशेषकर **स्त्रियों** ने अपनी स्वतंत्र अस्मिता, अधिकारों और शोषण के खिलाफ बहुत ही मजबूत और मुखर आवाज उठाई।

- **भूमण्डलीकरण (Globalization) और उपभोक्ता संस्कृति का विरोध:** उदारीकरण और वैश्वीकरण के दौर में बाजारवाद ने इंसान को केवल 'ग्राहक' बना दिया है और मानवीय रिश्तों को पैसों से तौला जाने लगा है। समकालीन कवियों ने इस अंधी उपभोक्ता संस्कृति, पूँजीवादी जकड़बंदी और प्राकृतिक संसाधनों की लूट पर तीखा प्रहार किया है।
- **फासीवाद, आतंकवाद और राजनीतिक विडंबनाओं पर प्रहार:** देश और दुनिया में लोकतंत्र के नाम पर फैलती तानाशाही प्रवृत्तियों, सांप्रदायिक उन्माद, आतंकवाद और भ्रष्ट राजनीतिक तंत्र के खिलाफ समकालीन कविता एक कड़ा प्रतिरोध (Resistance) बनकर सामने आती है।
- **भाषा में सहजता, खुलापन और संवाद-शैली:** साठोत्तरी कविता के आक्रामक तेवर के बाद समकालीन कविता की भाषा बहुत अधिक संप्रेष्य (बात को सीधे पहुँचाने वाली) हो गई है। इसमें कठिन शब्दों के बजाय आम बोलचाल की भाषा, चुटीले मुहावरे और एक सीधे 'संवाद' की शैली का प्रयोग किया जाता है, ताकि वह हर पाठक के दिल को छू सके।
- **पर्यावरण और प्रकृति का संकट:** आधुनिक विकास के नाम पर जंगलों के कटने, नदियों के सूखने और ग्लोबल वार्मिंग जैसी समस्याओं को भी समकालीन कविता ने अपनी चिंता का मुख्य विषय बनाया है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो **समकालीन कविता** हमारे आज के इस अशांत, जटिल और यंत्र-युग में मनुष्य के भीतर की मानवता को बचाए रखने की एक ईमानदार कोशिश है। यह सिर्फ मनोरंजन या कला का साधन नहीं, बल्कि न्याय, समानता और मानवीय गरिमा के पक्ष में खड़ी एक सशक्त आवाज है।

प्रश्न 45: भारतेन्दु युग से लेकर समकालीन कविता तक खड़ीबोली के विकास-क्रम को समझाइए।

हिंदी कविता की भाषा का विकास मूल रूप से 'ब्रजभाषा' से 'खड़ीबोली' की यात्रा है। भारतेन्दु युग से लेकर समकालीन कविता तक खड़ीबोली ने किस प्रकार रूप बदला और कैसे वह आधुनिक हिंदी की संपूर्ण और समर्थ भाषा बनी, इसका संक्षिप्त विकास-क्रम इस प्रकार है:

- **1. भारतेन्दु युग (सन् 1850 - 1900): संक्रांति और गद्य की भाषा**
 - इस काल में कविता के लिए मुख्य रूप से 'ब्रजभाषा' का ही प्रयोग जारी रहा, क्योंकि कवियों को लगता था कि कविता में मिठास केवल ब्रजभाषा से ही आ सकती है।
 - हालाँकि, गद्य (नाटक, निबंध आदि) के लिए 'खड़ीबोली' को पूरी तरह अपना लिया गया। खड़ीबोली का यह शुरुआती और संक्रांति का दौर था।
- **2. द्विवेदी युग (सन् 1900 - 1920): खड़ीबोली की प्रतिष्ठा और व्याकरणिक अनुशासन**
 - आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से यह बीड़ा उठाया कि अब कविता भी खड़ीबोली में ही लिखी जाएगी।
 - मैथिलीशरण गुप्त और 'हरिऔध' जैसे कवियों ने खड़ीबोली में महाकाव्य और राष्ट्रीय कविताएँ लिखकर यह साबित कर दिया कि यह भाषा बड़े और गंभीर विषयों को उठाने में पूरी तरह सक्षम है। भाषा में व्याकरण की शुद्धता और अनुशासन आया।
- **3. छायावाद (सन् 1918 - 1936): भाषा का कोमल और जादुई रूप**
 - छायावाद के दौर में खड़ीबोली का रूप अत्यंत परिष्कृत, कोमल, और अलंकृत हो गया। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी ने इसमें अमूर्त कल्पना, प्रतीक, बिंब और संगीत की ऐसी शक्ति भरी

कि खड़ीबोली दुनिया की किसी भी समृद्ध साहित्यिक भाषा के समकक्ष खड़ी हो गई। निराला जी ने इसमें 'मुक्त छंद' की शुरुआत की।

- **4. प्रगतिवाद और प्रयोगवाद (सन् 1936 - 1950 के बाद): जनवादी और बौद्धिक भाषा**
 - प्रगतिवाद ने खड़ीबोली को कठिन शब्दावली से निकालकर मजदूरों, किसानों और आम बोलचाल की सीधी, खरी और ओजस्वी भाषा बनाया।
 - प्रयोगवाद और 'नई कविता' ने इसमें बौद्धिक गहराई, महानगरों की टूटन, नए प्रतीकों और रोजमर्रा की जिंदगी के मुहावरों को पिरोया, जिससे भाषा अधिक लचीली और आधुनिक बनी।
- **5. साठोत्तरी और समकालीन कविता (सन् 1960 के बाद से अब तक): संवाद और तीखे तेवर की भाषा**
 - समकालीन दौर तक आते-आते खड़ीबोली पूरी तरह एक 'लोकतांत्रिक और संवाद-प्रधान' भाषा बन गई। इसमें छंद या कृत्रिम आभूषणों का मोह छूट गया। भाषा इतनी सहज, सीधी और पैनी हो गई कि वह सीधे आम आदमी के दुःख, संघर्ष, राजनीति और व्यवस्था के खिलाफ एक सीधा संवाद स्थापित करती है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो भारतेन्दु युग की संकोची खड़ीबोली ने द्विवेदी युग के अनुशासन, छायावाद के सौंदर्य और आधुनिक धाराओं के संघर्ष से गुजरते हुए आज एक ऐसी सर्वसमावेशी और सशक्त राष्ट्रभाषा का रूप ले लिया है जिसमें साहित्य की हर विधा पूरी ताकत से धड़कती है।

प्रश्न 46: 'असाध्य वीणा' में अनुगूँजित 'सृजनात्मक रहस्यवाद' पर प्रकाश डालिए।

उत्तर: अज्ञेय की लंबी कविता 'असाध्य वीणा' में अभिव्यक्त रहस्यवाद हिंदी साहित्य के पारंपरिक रहस्यवाद (जैसे कबीर या महादेवी का रहस्यवाद) से सर्वथा भिन्न है। इसे 'सृजनात्मक रहस्यवाद' कहा जाता है, जिसे निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- **पारंपरिक रहस्यवाद से भिन्नता:** अज्ञेय का रहस्यवाद किसी पारलौकिक सत्ता (ईश्वर) से एकाकार होने की कोशिश नहीं है। इसके विपरीत, यह व्यक्ति के भीतर गहराई में निहित 'सृजनात्मक शक्ति' (Creative Energy) को पा लेने या जगाने का प्रयास है।
- **जैन बौद्ध दर्शन का प्रभाव:** इस कविता के रहस्यवाद पर जापानी 'जैन बौद्ध धर्म' का गहरा प्रभाव है। जहाँ पारंपरिक रहस्यवाद किसी परम तत्त्व (ब्रह्म) की खोज से प्रेरित होता है, वहीं जैन दर्शन का लक्ष्य 'शून्य' (परम मौन या पूर्ण शून्यता) की साधना है।
- **तटस्थता और बौद्धिकता:** चूँकि अज्ञेय एक बौद्धिक और रोमैंटिक कवि हैं, इसलिए उनके रहस्यवाद में कबीर या जायसी जैसी भावनात्मक तड़प या व्याकुलता के बजाय एक प्रकार की 'तटस्थता' (Objectivity) दिखाई देती है।
- **ज्ञाता और ज्ञेय का अद्वैत (एकत्व):** कविता में रहस्यवाद की चरम स्थिति तब घटित होती है, जब ज्ञाता (बजाने वाला प्रियंवद) और ज्ञेय (वीणा) का भेद पूरी तरह समाप्त हो जाता है। जब तक 'मैं' (अहंकार) रहता है, तब तक सृजन नहीं होता। प्रियंवद जब अपने अहंकार को शून्य में विसर्जित कर देता है, तभी वह 'सृजन के चरम बिंदु' तक पहुँचता है।
- **निष्कर्ष:** स्पष्ट है कि 'असाध्य वीणा' में अज्ञेय ने सृजनात्मक रहस्यवाद की अत्यंत प्रभावशाली और दार्शनिक प्रस्तुति की है, जो आधुनिक हिंदी साहित्य की एक अप्रतिम उपलब्धि है।

प्रश्न 47: " 'असाध्य वीणा' कविता मार्क्सवादी रचना-दृष्टि को खंडित करने का रचनात्मक उपक्रम है।" इस कथन पर विचार कीजिए।

उत्तर: 'असाध्य वीणा' को केवल एक रहस्यवादी कविता ही नहीं, बल्कि तत्कालीन समय में हावी 'मार्क्सवादी (प्रगतिवादी) साहित्य-सिद्धांतों' के विरोध या खंडन के रूप में भी देखा जाता है। इसके प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं:

- **मार्क्सवादी दृष्टि की सीमा:** मार्क्सवाद (Marxism) की यह स्पष्ट और यांत्रिक अवधारणा रही है कि किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी सामाजिक और भौतिक परिस्थितियों का प्रतिबिंब मात्र होता है, और साहित्य का एकमात्र उद्देश्य 'वस्तुनिष्ठ सामाजिक यथार्थ' (Objective Reality) की अभिव्यक्ति करना है।
- **व्यक्ति की आंतरिक सत्ता की प्रतिष्ठा:** अज्ञेय ने 'असाध्य वीणा' की रचना करके मार्क्सवाद की इसी भौतिकवादी और यांत्रिक धारणा को खंडित किया है। यह कविता बाहरी समाज के नारों की नहीं, बल्कि व्यक्ति के 'आंतरिक सत्य', 'अहं-विसर्जन' और 'आध्यात्मिक अनुभूति' की कविता है।
- **सृजन की वैयक्तिकता बनाम सामूहिकता:** मार्क्सवाद जहाँ 'सामूहिकता' (Collectivism) पर बल देता है, वहीं अज्ञेय यह सिद्ध करते हैं कि सच्चा और महान सृजन एकांत साधना और व्यक्ति के भीतर के गहरे 'मौन' (शून्य) से उपजता है। वीणा किसी भीड़ या समाज के शोर से नहीं, बल्कि केशकंबली प्रियंवद के पूर्ण आत्म-समर्पण से बजती है।
- **अनुभूति की बहुलता:** जब वीणा बजती है, तो वहाँ उपस्थित हर व्यक्ति (राजा, रानी, जनता) उसे अपनी-अपनी व्यक्तिगत अनुभूति और आवश्यकता के अनुसार अलग-अलग सुनता है। यह 'व्यक्तिगत अनुभूति की स्वतंत्रता' मार्क्सवादी एकरूपता का सीधा खंडन है।
- **निष्कर्ष:** इस प्रकार, अज्ञेय ने मार्क्सवाद की रूढ़िवादी धारणाओं को तोड़ते हुए 'असाध्य वीणा' में मनुष्य की स्वतंत्र सत्ता, उसकी वैयक्तिकता और उसकी आंतरिक सृजनात्मक रहस्यमयता को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है।

प्रश्न 48: " 'मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का आत्मसंघर्ष' ब्रह्मराक्षस कविता का केन्द्रीय स्वर है।" इस कथन पर विचार कीजिए।

उत्तर: मुक्तिबोध की कविता 'ब्रह्मराक्षस' की संश्लिष्ट चेतना से जो सबसे प्रमुख स्वर उभरकर सामने आता है, वह है— 'मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का आत्मसंघर्ष'। इस आत्मसंघर्ष और कविता के मूल कथ्य को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

- **'आत्मचेतस' और 'विश्वचेतस' का द्वंद्व:** मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों में 'आत्मचेतस' (स्वयं के प्रति चेतना) और 'विश्वचेतस' (संसार के प्रति चेतना) की युगापत और द्वंद्वात्मक उपस्थिति बनी रहती है।
- **प्रबल नैतिक मन (Super Ego) का दबाव:** इन बुद्धिजीवियों का व्यावहारिक मन जहाँ आत्मसंशय (Self-doubt) की ओर भागता है, वहीं उनका 'नैतिक मन' इतना प्रबल होता है कि वह उन्हें बार-बार विश्व की चिंताओं से जोड़ता है। इसी नैतिक दबाव के कारण वे इतने तनावग्रस्त रहते हैं कि दुनिया की हर समस्या के लिए स्वयं को जिम्मेदार ठहराने लगते हैं।
(कवि ने लिखा है: "आत्मचेतस किन्तु उस / व्यक्तित्व में थी प्राणमय अनबन..... / विश्वचेतस से-बनाव!")
- **व्यक्तित्व की स्वायत्तता का महत्व:** कविता में आत्मसंघर्ष को सिर्फ एक स्थिति के रूप में नहीं, बल्कि उसके मूल कारणों की गहन समीक्षा के रूप में लिया गया है। मुक्तिबोध 'जड़ मार्क्सवादियों' के इस दावे

का खंडन करते हैं कि व्यक्तित्व केवल आर्थिक-सामाजिक स्थितियों का उत्पाद है। वे स्वयं कविता में 'ब्रह्मराक्षस के शिष्य' के रूप में उपस्थित होकर व्यक्ति के स्वतंत्र 'व्यक्तित्व' का महत्व स्थापित करते हैं।

- **सामाजिक उत्तरदायित्व से विमुखता की त्रासदी:** यह कविता स्पष्ट करती है कि जो बुद्धिजीवी केवल अपने अहंकार या एकांत साधना में डूबे रहते हैं और अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा नहीं करते, उनकी नियति अत्यंत त्रासद होती है।

(उदाहरण: "वह कोठरी में किस तरह / अपना गणित करता रहा / औ' मर गया...")

- **अतिरेकवादी पूर्णता की विफलता:** कविता यह भी स्थापित करती है कि ज्ञान या जीवन में 'अतिरेकवादी पूर्णता' (Absolute Perfection) प्राप्त करने का प्रयास हमेशा विफल होने को बाध्य होता है।
- **अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से सीमित सहमति:** मुक्तिबोध यहाँ अस्तित्ववाद की इस मान्यता से कुछ हद तक सहमत दिखते हैं कि 'व्यक्तित्व में पूर्ण सामंजस्य' कोरी कल्पना है; बल्कि वेदना, अलगाव और संत्रास जैसी मनःस्थितियाँ एक प्रामाणिक व्यक्तित्व के उभरने की अनिवार्य स्थितियाँ हैं।

निष्कर्ष: इस प्रकार, 'ब्रह्मराक्षस' कविता केवल एक फंतासी नहीं है, बल्कि इसमें मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी व्यक्ति का आत्मसंघर्ष, उसकी पूर्णता की सनक और सामाजिक यथार्थ से कटने की त्रासदी अपने विभिन्न पहलुओं के साथ अत्यंत गहराई से अभिव्यक्त हुई है।

प्रश्न 49: "नागार्जुन जनजीवन, धरती व मानव प्रेम के पुजारी हैं।" इस कथन पर विचार कीजिए।

उत्तर: नागार्जुन आधुनिक काल (प्रगतिवाद) के एक ऐसे प्रतिनिधि कवि हैं, जिनकी रचनाओं में एक तरफ जनजीवन की समस्याओं के प्रति गहरी संवेदनशीलता है, तो दूसरी ओर प्रकृति और लोक-सामान्य जीवन के प्रति गहरा लगाव है। इस कथन की सार्थकता को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

- **अकाल और मानवीय संवेदना:** अपनी प्रसिद्ध कविता 'अकाल और उसके बाद' में नागार्जुन ने अकाल की मार्मिक स्थिति और उसके बाद की खुशी का अत्यंत यथार्थपरक चित्र खींचा है। इस कविता में वे केवल इंसानों का ही नहीं, बल्कि अनेक प्राणियों के साझे सुख-दुःख का वर्णन करते हैं (जैसे— "कई दिनों तक कानी कुतिया सोई न उसके पास")। यहाँ वे कुतिया की भूख के साथ-साथ उसकी विकलांगता के प्रति भी संवेदनशील नजरिया रखते हैं।
- **विचारधारा से ऊपर जन-सरोकार:** नागार्जुन के लिए कोई भी राजनीतिक विचारधारा (वामपंथ या दक्षिणपंथ) भूखी जनता की ज़रूरतों से बड़ी नहीं है। वे कोरी राजनीति से ऊपर उठकर कहते हैं:
"क्या है दक्षिण क्या है वाम / जनता को रोटी से काम"
उनकी आम जनता के प्रति यह गहरी पीड़ा "रोता हूँ लिखता जाता हूँ" जैसी पंक्तियों में स्पष्ट झलकती है।
- **धरती और प्रकृति का यथार्थपरक सौंदर्य:** प्रकृति-चित्रण में वे केवल सुंदर और 'अभिजात' (elite) विषयों तक सीमित नहीं रहे। जहाँ एक ओर उन्होंने हिमालय का भव्य वर्णन किया है ("अमल धवल गिरि के शिखरों पर बादल को घिरते देखा है"), वहीं दूसरी ओर उन्होंने 'कटहल' और 'नेवला' जैसे नितांत ठेठ और साधारण विषयों पर भी कविताएँ लिखी हैं ("अहा कैसा मह मह करता है यह कटहल"), जो उनके 'धरती के प्रेम' को पुष्ट करता है।

- **गार्हस्थिक और दायित्वमूलक मानव प्रेम:** नागार्जुन का प्रेम रीतिकाल की तरह भोगमूलक या विलासी नहीं है, बल्कि यह आम जनसाधारण के परिवारों में पनपने वाला 'गार्हस्थिक और दायित्वमूलक प्रेम' है। परदेस में अकेले होने पर उन्हें पत्नी का "सिंदूर तिलकित भाल" याद आता है।
- **सामाजिक विषमताओं पर प्रहार:** मानव प्रेम के पुजारी होने के नाते, वे समाज में व्याप्त अमानवीय प्रथाओं का कड़ा विरोध करते हैं। 'हरिजन गाथा' जैसी कविता के माध्यम से उन्होंने समाज में विद्यमान जाति व्यवस्था की क्रूर विषमताओं पर गहरा प्रहार किया है।

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जिस तरह से नागार्जुन ने अपनी रचनाओं में अकाल की पीड़ा, साधारण वस्तुओं के प्रति राग, गार्हस्थिक प्रेम और शोषितों के प्रति गहरी सहानुभूति को पिरोया है, उसे देखते हुए उन्हें 'जनजीवन, धरती व मानव प्रेम का पुजारी' कहना बिल्कुल भी अतिशयोक्ति नहीं होगी।

प्रश्न 50: भूमंडलीकरण और बाजारवाद के दौर में 'उत्तर-समकालीन हिंदी कविता' (21वीं सदी की कविता) की प्रमुख प्रवृत्तियों और चुनौतियों का विस्तार से मूल्यांकन कीजिए।

हिंदी साहित्य में सन् 1990 के बाद (विशेषकर उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के आगमन के बाद) की कविता को 'उत्तर-समकालीन कविता' या '21वीं सदी की हिंदी कविता' कहा जाता है। इस दौर की कविता पिछले दशकों की राजनीतिक नारों वाली कविता से अलग है। यह सीधे तौर पर आज के बाजारवाद, तकनीक और बदलते मानवीय रिश्तों के यथार्थ से टकराती है। इसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ (विशेषताएँ) निम्नलिखित हैं:

- **1. भूमंडलीकरण और उपभोक्तावाद का तीखा विरोध:**
21वीं सदी की कविता की सबसे बड़ी चिंता यह है कि भूमंडलीकरण (Globalization) और बाजारवाद ने मनुष्य को केवल एक 'उपभोक्ता' (Consumer) और मानवीय संवेदनाओं को 'बिकाऊ वस्तु' बना दिया है। आज के कवि (जैसे— मंगलेश डबराल, वीरेन डंगवाल, अरुण कमल) अपनी कविताओं में इस बहुराष्ट्रीय पूँजीवाद और कॉर्पोरेट लूट के खिलाफ गहरी चिंता और प्रतिरोध दर्ज करते हैं।
- **2. विमर्शों की प्रबलता (स्त्री, दलित और आदिवासी विमर्श):**
उत्तर-समकालीन कविता का सबसे मजबूत पक्ष यह है कि इसमें हाशिए के समाज ने अपनी आवाज़ स्वयं उठाई है। अब सवर्ण या पुरुष कवि दलितों या स्त्रियों के लिए सहानुभूति नहीं लिखते, बल्कि स्त्रियाँ, दलित और आदिवासी स्वयं अपने अधिकार, अपनी पीड़ा और अपनी अस्मिता (Identity) की कविता पूरी आक्रामकता और तार्किकता के साथ लिख रहे हैं (जैसे— निर्मला पुतुल, बट्टी नारायण, अनामिका आदि की कविताएँ)।
- **3. विस्थापन की पीड़ा और गाँव-शहर का द्वंद्व:**
विकास के नाम पर कारखानों, बांधों और स्मार्ट शहरों के निर्माण ने गाँवों को उजाड़ दिया है। इस दौर की कविता में अपने घर, अपनी ज़मीन और संस्कृति से उखड़ने (Displacement) का गहरा दर्द है। गाँवों का खाली होना और महानगरों में 'प्रवासी मजदूर' के रूप में जीवन जीने का संत्रास इस कविता का मुख्य स्वर है।
- **4. तकनीकी विस्तार और आभासी दुनिया (Virtual World) का संकट:**
यह इंटरनेट, सोशल मीडिया और स्मार्टफोन का दौर है। आज की कविता दिखाती है कि कैसे तकनीक ने दुनिया को तो जोड़ दिया है, लेकिन इंसान अपने ही घर में नितांत अकेला और अजनबी हो गया है।

डिजिटल दुनिया के इस अकेलेपन, अवसाद और आभासी (Virtual) रिश्तों की खोखलाहट को आज के युवा कवि बहुत बारीकी से पकड़ रहे हैं।

- **5. पर्यावरण और पारिस्थितिकी (Eco-criticism) की चिंता:**

कारपोरेट विकास के कारण जंगलों की कटाई, नदियों के सूखने और पहाड़ों के दरकने की चिंता इस दौर की कविता में बहुत मुखर हुई है। यह केवल प्रकृति का सुंदर चित्रण नहीं है, बल्कि 'इको-क्रिटिसिज्म' (पारिस्थितिकीय आलोचना) है, जो पृथ्वी को बचाने की गुहार लगाती है।

- **6. भाषा और शिल्प का नया रूप:**

इस दौर की कविता की भाषा पूरी तरह से गद्य के करीब, सहज और संवादात्मक हो गई है। इसमें इंटरनेट के नए शब्द, अंग्रेजी के शब्द और लोक-भाषा का एक ऐसा खुलापन है, जो सीधे आम आदमी से जुड़ता है। हालाँकि, सोशल मीडिया की जल्दबाजी के कारण कभी-कभी इसमें पुराने समय जैसी दार्शनिक गहराई की कमी भी दिखाई देती है।

निष्कर्ष:

संक्षेप में कहें तो, 'उत्तर-समकालीन हिंदी कविता' केवल कला के लिए कला नहीं है। यह रोबोट और मशीन होते जा रहे समाज में 'मनुष्य की बची हुई मनुष्यता' को तलाशने, बचाने और वैश्विक बाज़ार की क्रूरताओं के खिलाफ खड़ी एक बहुत ही जीवंत और बेचैन कविता है।